श्री श्री शोभा माँ

बालिका ब्रह्मज्ञा

श्री श्री शोभा माँ

राय साहब श्री अक्षय कुमार दत्त गुप्त,
कविरत्न एम. ए.
प्रणीत

अनुदित-डॉ० निर्मला जैन
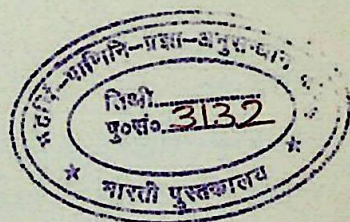
संत आश्रम, वाराणसी

प्रकाशक :
अरहन्त कुमार जैन
संत आश्रम
डी ५३/८८ संत नगर
लक्सा, वाराणसी

आर्थिक सहयोग :
श्रीयुत् प्रसाद राहा

तृतीय संस्करण

फरवरी १९९५

मूल्य : ४५.००

अनुदित-डॉ० निर्मला जैन

अक्षर संयोजन
जौहरी प्रॉसेस
जगंमबाड़ी, वाराणसी

मुद्रक :
महावीर प्रैस
भेलूपुर, वाराणसी

ॐ
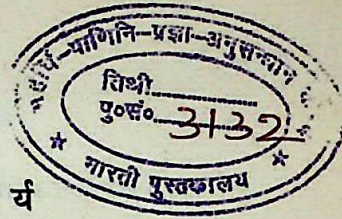
क्षित्यादिषु प्रकटिताष्टतनुः पुन र्य
स्तन्वष्टकं सुशुचि सदगुरुनाम चान्यत्।
जग्राह तं पतिततारणमात्र-कामम्
पाशाष्टकोपहत ईशमहम् स्मरामि॥

क्षिति आदि (अर्थात् भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और यज्ञ में दीक्षित द्विज—इन) अष्ट तनु में अपने को प्रकटित करके पतित जनों का उद्धार करने की एकमात्र कामना के वश से जिन्होंने पुनः सद्गुरु नाम का मललेश शून्य पृथक् अष्टतनु धारण किया है —अष्टपाश से उपहत मैं उस परमेश्वर को स्मरण कर रहा हूँ।

❋

I do not forgive in my friends the failure to know a fine character and to entertain it with thankful hospitality. When at last that which we have always longed for is arrived, and shines on us with glad rays out of that far celestial land, then to be coarse, then to be critical and treat such a visitant with the jabber and suspicion of the streets, argues a vulgarity that seems to shut the doors of heaven.

This is confusion, this is right insanity, when the soul no longer knows its own, nor where its allegiance, its religion are due.

Emerson.

❋

"ब्रह्म-साक्षात्कार होने पर छोटे-बड़े सभी विषयों का ज्ञान हो जाता है। अवश्य ही यदि पूर्णब्रह्मज्ञान हो जाता है तभी, अन्यथा नहीं। क्योंकि पूर्णब्रह्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान के बीच पार्थक्य है। ब्रह्मज्ञान सामान्य ज्ञान है, किन्तु पूर्णब्रह्मज्ञान होने पर सामान्य के साथ-साथ अनन्त विषयों का ज्ञान हो जाता है।"

श्री श्री शोभा माँ

प्रकाशकीय

अति आनन्द का विषय है कि 'श्री श्री शोभा माँ' पुस्तक का पुनर्मुद्रण माँ की कौस्तुभ जन्म जयन्ति के पावन अवसर पर हो रहा है। स्नेहमयी माँ ने पुस्तक प्रकाशन के माध्यम से मुझ पर जो कृपावृष्टि की है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्री श्री माँ के गुणोदधि का पार नहीं पाया जा सकता, फिर भी इतना ही कहा जा सकता है कि 'पूर्णब्रह्मज्ञ माँ' के पुनीत जीवन चरित्र को पढ़कर कौन जिज्ञासु गौरवान्वित, लाभान्वित, आनन्दित व समाहित नहीं होगा?

श्रीयुत् प्रसाद रहा ने पुस्तक-मुद्रण हेतु आर्थिक सहायता प्रदान कर धन का सदुपयोग किया है।

अन्त में इतना ही कहूँगा कि श्री श्री माँ की अध्यात्म-सुरभि दिग्-दिगन्त व्यापिनी हो, माँ जयवन्त हों। प्रभु से प्रार्थना है कि वे दीर्घायु होकर प्रत्यक्ष परोक्ष रूप में अपनी सन्तति का कल्याण करती रहें।

चरण-चंचरीक

अरहन्त कुमार जैन

प्रथम संस्करण की भूमिका

सत्यद्रष्टा कवि ने गाया है "तुम्हारा कर्म तुम्हीं करती हो माँ, लोग कहते हैं करते हम।" मैं उसी महाकाव्य की प्रतिध्वनि करके इस पुस्तक के प्रणयन के सम्बन्ध में सरल विश्वास के साथ कहता हूँ, कि सर्वकर्माधीश्वरी जगन्माता ने मुझसे इस काम को करा लिया है। अगर यह सत्य है कि सचमुच में हम लोग कुछ नहीं करते, वही सब करती हैं, तो क्यों सब तरह से अयोग्य समझ कर भी मुझे इस कार्य में उन्होंने प्रवृत्त कराया है, इस प्रश्न का जवाब मेरे देने का नहीं है। इसके गुण और अवगुण के लिये वही उत्तरदायी हैं।

किन्तु मनुष्य का कर्त्तृत्वाभिमान दुर्निवार है। उसी अभिमान से मैं सबसे पहले इसका सब फलाफल उन्हीं के चरणों में अर्पण कर रहा हूँ।

इस ग्रन्थ में मेरे ज्ञान और विश्वास से सत्य को छोड़कर मिथ्या को स्थान नहीं दिया गया है। जो मेरे साक्षात् ज्ञान के बाहर है, ऐसा कुछ लिपिबद्ध करने में सर्वत्र मूल का उल्लेख किया गया है। अतिरञ्जन की प्रवृत्ति वर्त्तमान क्षेत्र में मेरे प्रति बिल्कुल ही लागू नहीं होती; क्योंकि मैं अन्य सद्गुरु के आश्रित हूँ, शोभा माँ का शिष्य नहीं हूँ; यहाँ तक कि उस सम्प्रदाय का भी कोई नहीं हूँ। शोभा माँ के या उनके गुरुदेव श्री श्री सन्तदास बाबाजी के माहात्म्य प्रचार में मेरा साक्षात् या परोक्ष कोई स्वार्थ नहीं है, बल्कि भावप्रवणता की ख्याति या अख्याति दूरातीत बाल्यावस्था से उपस्थित बुढ़ापे तक किसी दिन किसी ने भी मुझे नहीं दी है।

पुस्तक का परिचय पाठक पुस्तक में ही पायेंगे। मुखबन्ध में उसकी पुनरुक्ति निष्प्रयोजन है। सहृदय पाठक इसे धैर्य के साथ, और सम्भव होने पर जिन लोगों की महिमा इसमें कीर्तित हुई है, उन लोगों पर समुचित श्रद्धा के साथ, पाठ करने को हम विनय के साथ आह्वान कर रहे हैं। अगर कोई किसी कारण से पूर्व से ही विरुद्ध भाव से आपन्न रहे हों, तो उनको भी तत्काल के लिये इस संस्कार से वर्जित होकर पाठ करने का अनुरोध करता हूँ। अवश्य रचना के सब दोष के लिये मैं ही उत्तरदायी हूँ। घटना समूह का दायित्व उन्हीं का है जो अघटन घटाने में सुपटु हैं, जिनकी महिमा से "सूर्य चन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठतः" सूर्य और चन्द्र (शून्य आकाश में) विधृत रहे हैं।

शोभा माँ के जीवन-इतिहास की सीमा प्रतिदिन प्रसारित हो रही है, एवं शतवर्ष तक हो, यही कामना करता हूँ। वर्तमान काल में इस इतिहास को लिखे जाने

के लिये किसी एक जगह पूर्ण-विराम-चिह्न अवश्य ही दे लेना पड़ेगा। इस पुस्तक का कलेवर भी साधारण प्रयोजन आदि पर लक्ष रख कर हमने बँगला १३४५ साल के अन्त में विराम चिह्न खींच दिया है। केवल उपसंहार में जिन सब चिट्ठियों का कुछ-कुछ अंश उद्धृत हुआ है, उनमें से कुछ उस समय के बाद में प्राप्त हुआ है।

शोभा माँ के पिता श्रीयुत सुकुमार बाबू ने इस पुस्तक की पाण्डुलिपि का स्वयं पाठ किया था और शोभा माँ को भी पढ़कर सुनाया था। उन दोनों ने जगह-जगह पर कुछ-कुछ संशोधन आदि भी किये थे। इसको छोड़कर सुकुमार बाबू ने इस पुस्तक रचना में हमारे द्वारा उनकी डायरी का इस्तेमाल आनन्द से अनुमोदित किया था। इन सब अनुग्रहों के लिए मैं उनका विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ। महामहोपाध्याय श्रीयुक्त गोपीनाथ कविराज ने भी इस पुस्तक की पाण्डुलिपि को आदि से अन्त तक पाठ करके दो एक अशुद्धियों का संशोधन करने में सहायता की है। इस पुस्तक ने सर्वांश में उनका अनुमोदन लाभ किया है, इसलिये मैं अत्यन्त आनन्दित हूँ और शंका रहित चित्त से इसे सत्यप्रिय सुधीजनों के हाथ में अर्पण कर रहा हूँ।

डाक्टर श्रीमान् सुरेशचन्द्र देव ने इस (बँगला) ग्रन्थ को प्रकाशित करने में बहुत प्रकार से सहायता की है। वे मेरे परमार्थ-भ्राता हैं, और शोभा माँ में भी भक्तिमान् हैं। उनकी यह सहायता श्री श्री गुरुदेव के श्रीचरणों में कृतज्ञता के साथ निवेदन कर रहा हूँ।

कलकत्ता
श्रावण-२८, १३४८ (बंगला सन्)

सज्जनों का कृपाप्रार्थी
श्री अक्षय कुमार दत्तगुप्त

मुखबन्ध

परम श्रद्धेया १०८ श्री श्री शोभा माँ की कौस्तुभ-जयन्ति के स्वर्ण अवसर पर 'श्री श्री शोभा माँ' पुस्तक का तृतीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण आपके कर-कमलों में देते हुये मुझे अत्यन्त हर्ष हो रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक सर्वप्रथम बँगला भाषा में स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस देव के शिष्य एवं महामहोपाध्याय पं० श्री गोपीनाथ कविराज जी के गुरुभ्राता श्री अक्षयकुमार दत्त गुप्त के द्वारा लिखी गयी थी। डॉक्टर श्रीमान् सुरेशचन्द्र देव ने इस पुस्तक को हिन्दी भाषा में अनुदित किया, जिसका प्रथम व द्वितीय संस्करण समाप्त हो चुका है। हिन्दी भाषाविदों की बढ़ती हुयी माँग को देखकर अब तृतीय संस्करण को प्रकाशित करने की अनिवार्यता प्रतीत हुयी।

पुस्तक में निम्बार्क सम्प्रदाय के ५६ वें सद्गुरु के रूप में वन्द्य श्री श्री माँ के बाल्य-जीवन से लेकर साधना के क्रमबद्ध सोपानों का अतिक्रम करते हुये उनकी पूर्णब्रह्मज्ञता प्राप्ति तक का वर्णन है। यह कितना प्रेरणास्पद व आह्लादजनक विषय है कि मात्र १५-१६ वर्ष की अल्पवय में ही श्री श्री माँ साधना के गम्भीरतम रहस्य को हस्तगत कर 'बालिका-ब्रह्मज्ञा' के रूप में ख्यात हुईं।

'स्मृति' लेख पुस्तक में परिवर्धित अंश है, जो स्वयं श्री श्री माँ की लेखनी से प्रसूत उनकी अद्वितीय अचल गुरुभक्ति का परिचायक है।

'मातृवाणी' में श्री श्री माँ के कतिपय अनमोल वचनों का संग्रह है, जिससे प्रेरणा लेकर साधक साधन-पथ का पाथेय संग्रह कर सकता है।

प्रस्तुत पुस्तक की प्रामाणिकता स्वयं सिद्ध है, यों व्यवहारिक-स्तर पर अध्यात्म मनीषी पं० श्री गोपीनाथ कविराज जी ने इसे आद्योपान्त पढ़कर, इसकी प्रामाणिकता में चार चाँद लगा दिये हैं। वे स्वयं ब्रह्मज्ञ बालिका के दर्शनों की उत्कण्ठा लिये त्रिपुरा जिले के वरकान्ता ग्राम गये थे[१] एवं लम्बे समय तक पत्राचार आदि माध्यमों से सत्संग का लाभ उठाते रहे। इतना ही नहीं अध्यात्म-जगत को श्री श्री माँ का प्रथम परिचय इन्हीं के माध्यम से हुआ। पुस्तक के अंतिम भाग में उनका लेख व पत्र दिया गया है।

---

१. (क) देखिये—'श्री श्री शोभा माँ' पृ० १
   (ख) 'मनीषी की लोकयात्रा', चतुर्थ संस्करण पृ० २०५

प्रस्तुत संस्करण को अनुदित करने का सौभाग्य मुझे श्री श्री माँ की कृपा से प्राप्त हुआ। २६ फरवरी, १९६९ से १९९५ तक २७ वर्षों के दीर्घकाल में सतत् माँ की कृपा-धारा से अनुप्राणित रही हूँ। माँ की लौकिक-लोकोत्तर कृपा का अनुभव करते हुये मेरा जीवन धन्य है! बिना प्रयास के बँगला-भाषा का ज्ञान माँ की अनेकानेक कृपाओं में से अन्यतम है, इसी कारण मैं अनुवाद करने में सक्षम हो सकी। हो सकता है प्रमादवश कुछ त्रुटि रह गयी हो, इसके लिये सुधी-पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

पुस्तक के मुद्रण से लेकर प्रूफ-रीडिंग आदि समस्त कार्य अरहन्त कुमार जैन ने श्रद्धापूर्वक सम्पन्न किये। श्री श्री माँ के कृपा-भाजन वे बने रहें।

श्री श्री शोभा माँ के चरण-कमलों में विनीत प्रार्थना है कि मैं उन्हीं की कृपा से निज-तत्त्व को पहचान कर उसमें लीन हो सकूँ।

कृपाकांक्षिणी

डॉ० कु० निर्मला जैन

जगज्जननी श्री श्री माँ
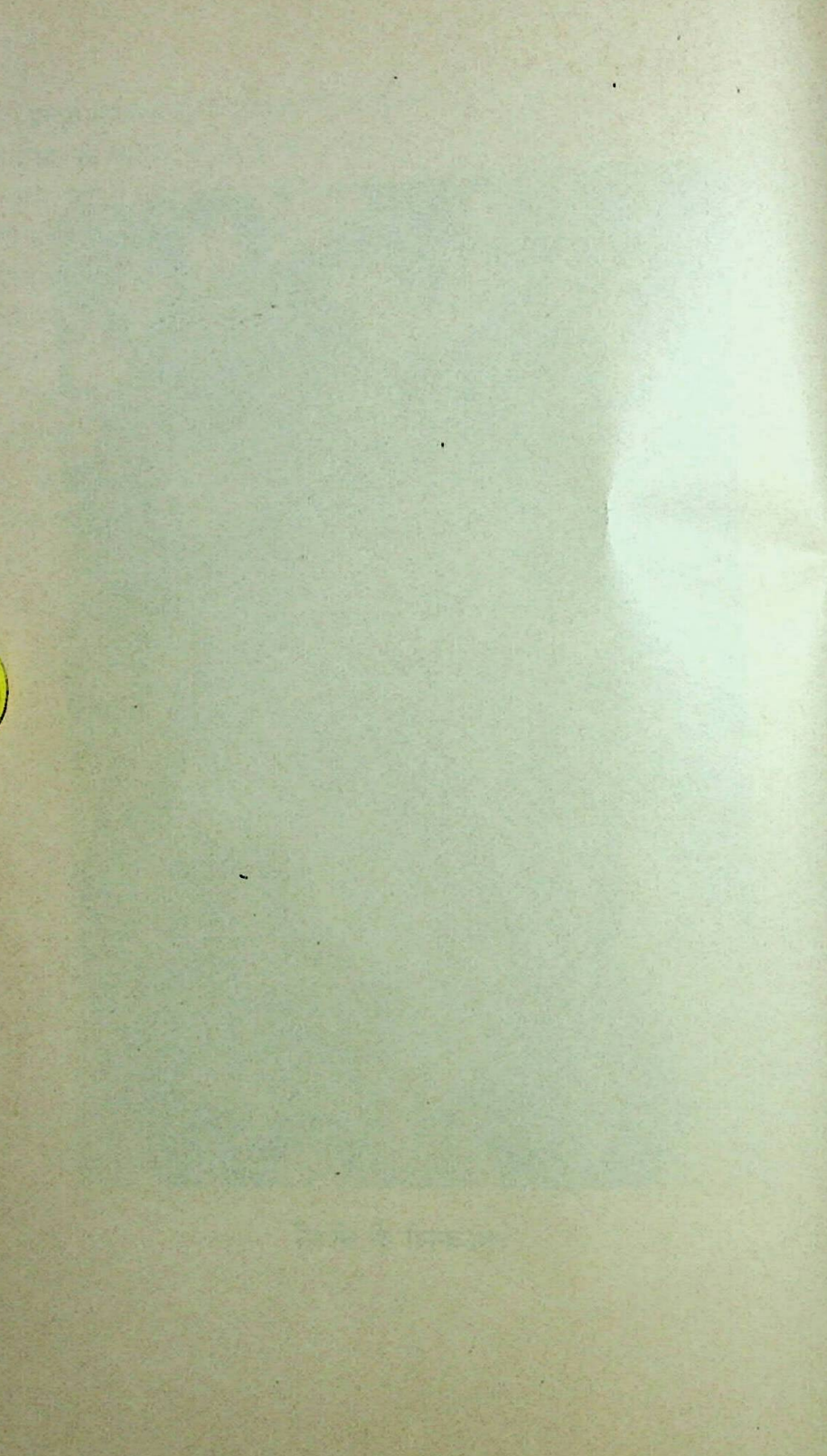
श्री श्री शोभा माँ

एक

श्री श्री शोभा माँ के साथ मेरा परिचय अंग्रेजी सन् १९३८ के दिसम्बर मास के अन्त में हुआ। इसके पहले मैंने अपने परम प्रीति भाजन मित्र और गुरुभाई, काशी गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज के अवकाश-प्राप्त अध्यक्ष (प्रिन्सिपल) महामहोपाध्याय पण्डित श्रीयुत गोपीनाथ कविराज, एम. ए. तथा दूसरे दो-एक व्यक्तियों द्वारा उनके नाम और आध्यात्मिक क्षेत्र में उनकी अत्यन्त उन्नत अवस्था की थोड़ी-बहुत बातें सुनीं थीं। सन् १९३८ के ही अप्रैल महीने में महामहोपाध्याय गोपीनाथ पूर्ण कुम्भ-स्नान के उपलक्ष्य में हरिद्वार गए थे। ढाका की श्री श्री आनन्दमयी माँ इस समय वहीं अपने भक्त अवकाश-प्राप्त सिविल-सर्जन डॉ० पन्थ के "पीतकुटी" नामक भवन में रह रही थीं। इसी समय शोभा माँ के चचेरे भाई श्रीयुत शिशिर कुमार राहा आनन्दमयी माँ के पास नित्य आते थे और शोभा माँ की अनेक बातें और उनके मत उन्हें तथा अन्यान्य जिज्ञासु लोगों को सुनाते थे। इन्हीं के मुँह से श्रीयुत गोपीनाथ कविराज ने सर्वप्रथम शोभा माँ की बात सुनी। शिशिर बाबू व्रजविदेही श्री श्री सन्तदास बाबाजी के शिष्य थे। वे दीक्षा ग्रहण करने के बाद से गुरु के साथ ही रहते और गुरु के देहावसान के बाद पहले शिवपुर के निम्बार्काश्रम में और तदनन्तर गुरु के वृन्दावन वाले आश्रम में रहकर साधन, भजन आदि करते थे। हरिद्वार के पूर्ण कुम्भ मेले के दो वर्ष से कुछ और पूर्व ही शोभा माँ के पिता श्रीयुत बाबू सुकुमार राहा (बी.ए.बी.टी.) महाशय के एक पत्र में सहसा माँ की एक अवस्था-विशेष का विवरण पाकर और वस्तुतः कोई आध्यात्मिक अवस्था अथवा कोई रोग है, उसे पर्यवेक्षण और परीक्षा द्वारा देखने के लिए सुकुमार बाबू के अनुरोध पर शिशिर बाबू उनके कर्मस्थल त्रिपुरा जिले के बरकान्ता नामक ग्राम में गए। वहाँ निरीक्षण एवं परीक्षण करते-करते कुछ दिनों में ही उनके मन में ऐसा विश्वास जगा कि श्री श्री शोभा माँ बाबा सन्तदास जी के अलौकिक कृपा-बल से आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर वेग से बढ़ रही हैं। शिशिर बाबू जो देखते और सुनते थे, वह सब अपनी डायरी में लिख लेते थे। हरिद्वार के निवास-काल में

उनकी वह डायरी उनके साथ ही थी। महामहोपाध्याय गोपीनाथ जी के अनुरोध पर उन्होंने अपनी डायरी देखने को दी। महामहोपाध्याय अध्यात्म शास्त्र के परम पण्डित थे और वर्तमान भारतवर्ष में अद्वितीय पण्डित कहने में अत्युक्ति न होगी। वे शिशिर बाबू की डायरी पढ़ कर अत्यन्त विस्मित हुए और तुरन्त सङ्कल्प किया कि काशी से अत्यन्त दूर होने पर भी मैं बरकान्ता जाकर एक बार अपनी आँखों से शोभा माँ को देखूँगा।

साधुओं के साथ बातचीत और उनके साधन-रहस्य एवं साधन-लब्ध अभिज्ञता के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने की प्रवृत्ति पं० गोपीनाथ जी की सदा से ही प्रबल रही। इस विषय में उनके मन में तनिक भी साम्प्रदायिक सङ्कीर्णता या व्यक्तिगत अहङ्कार-अभिमान नहीं था। महापुरुष या महापुरुष के रूप में विख्यात किसी व्यक्ति के काशी आने का समाचार पाते ही पं० गोपीनाथ जी उनका दर्शन करते थे और जितने दिनों तक उनकी साधनादि के सम्बन्ध में ज्ञातव्य तथ्य प्राप्त नहीं कर लेते थे, उतने दिनों तक अवसर पाते ही उनके साथ विचार-विमर्श करते रहते थे। इस बार वे शोभा माँ के विषय में इतने कौतूहलाक्रान्त हो गए थे कि बरकान्ता तक दौड़ लगाने और उनके साथ बात करने को उत्सुक हो उठे और दो मास बाद ही पुरी के रास्ते कलकत्ते आकर शिशिर बाबू के मित्र और गुरुभाई बाबू देवहरि दे (बी.एस-सी) के साथ बरकान्ता चल दिये। देवहरि बाबू के साथ गोपीनाथ जी का परिचय हरिद्वार में ही हुआ था। बरकान्ता की यात्रा के समय कलकत्ते से दो और व्यक्ति गोपीनाथ जी के साथ हो लिए; एक डॉ० सुरेशचन्द्र देव (डी.एस-सी.), द्वितीय—श्रीयुत जितेशचन्द्र चक्रवर्ती। डॉ० सुरेशचन्द्र श्रीयुत गोपीनाथ जी के (अतः मेरे भी) गुरुभाई, अपेक्षाकृत अल्पवयस्क युवक एवं जड़विज्ञान में कृतविद्य होने पर भी धर्मानुरागी थे। जितेश हमारे कुल-पुरोहित के पुत्र थे, पॉटरी (Pottery) निर्माणविद्या में दक्षता प्राप्त करके आसनसोल के पास निर्शाचट्टी ग्राम में एक कारखाना खोलकर उसे चलाते थे। इसके पहले धर्म में उनके विशेष अनुराग की बात सुनी नहीं थी। डॉ० सुरेश कौतूहल से भर कर ही श्री गोपीनाथ जी के साथ हो लिए थे; जितेश अपने कारखाने के शेयर बेचने के लिए कुमिल्ला, श्रीहट्ट आदि स्थानों में जाने के लिए पहले से ही उत्सुक थे; इस समय पं० गोपीनाथ जी का साथ पाकर 'एक पन्थ दो काज' सिद्ध करने का सुयोग उन्हें दिखाई पड़ा।

अब तक मैंने शोभा माँ का नाम भी नहीं सुना था। श्रीयुत गोपीनाथ जी यद्यपि कलकत्ते होकर बरकान्ता गए तथापि उन्होंने मुझसे भेंट नहीं की। उनके

चले जाने पर मैंने एक दूसरे व्यक्ति द्वारा यह समाचार पाया। श्रीयुत गोपीनाथ जी बरकान्ता में कई दिन रुक कर वहाँ से कलकत्ते लौटकर पुरी चले गए और वहीं कुछ दिन रह गए। इस बार भी उन्होंने मुझसे भेंट नहीं की। इसके कुछ दिनों पश्चात् मेरे ग्राम के ही निवासी और सहोदर-तुल्य प्रेमी श्रीमान् मोतीलाल वणिक् (उपाधि-दत्त) एक दिन बंगाल लाइब्रेरी में मुझसे भेंट करने आये। मोती उस समय कलकत्ते में एक जापानी सौदागरी-कार्यालय के दलाल थे। मुझे विदित था कि वे कुलगुरु से गौड़ीय वैष्णव धर्म में दीक्षित होकर प्रख्यात वैष्णव पण्डित रसिक-मोहन विद्याभूषण से उपदेशादि ग्रहण करके कुछ-कुछ साधनादि करते हैं और सामान्यतः अच्छे धर्मानुरागी हैं। इधर श्रीयुत गोपीनाथ जी के साथ भी उनका बचपन से प्रेम था।

मोती ने आकर श्री श्री शोभा माँ का जितना विवरण उन्होंने सुना था, सब मुझे कह सुनाया। और यह भी कहा कि जितेश बरकान्ता में शोभा माँ से दीक्षा लेकर वहाँ से (समझता हूँ, अन्यान्य स्थानों पर होते हुए) हवीगंज में मेरी ही (मोती की ही) बड़ी पुत्री के घर अतिथि हुए थे। मोती ने कहा, मेरी पुत्री ने हवीगंज से मुझे इस भाव का पत्र लिखा था, "जितेश मामा, न जाने कैसे-कैसे हो गए हैं। सिर के बाल कटवाकर छोटे कर डाले हैं, चोटी रख ली है और गले में तुलसी की माला पहन ली है इत्यादि।" जितेश इसके पहले हैट-कोट पहनते थे और आचार-व्यवहार में साहब न होने पर भी, कण्ठी धारण जैसी रुचि उनमें पहले नहीं देखी गई थी। जितेश जाति के ब्राह्मण और जन्म से ही शाक्त वातावरण में पले थे; पुरोहिती उनका पैतृक व्यवसाय था, अतः उनमें कुछ जातीय अभिमान रहने की बात भी थी। इसके अतिरिक्त उनकी प्रकृति धीर थी और चंचलता उनमें कभी किसी ने लक्षित नहीं की थी। ऐसे ही जितेश चक्रवर्ती ने बरकान्ता जाते ही एक क्षत्रिय-बालिका (सुना था कि शोभा माँ की अवस्था उस समय सोलह-सत्रह वर्ष की ही थी) से केवल दीक्षा ही ग्रहण नहीं की, अपितु बाल कटवाये, चोटी रखाई, तुलसी की कण्ठी गले में पहनी और कैसे-कैसे भी हो गए; यह क्या? अवश्य ही बालिका शोभा में कुछ ऐसा है जिसने सहज ही इस असम्भव को सम्भव कर दिखाया।

इसके पश्चात्—समझता हूँ, अगस्त १९३८ में श्रीयुत गोपीनाथ जी पुरी से कलकत्ते लौटकर मुझसे मिले। उन्होंने कहा, मैंने शोभा माँ की जो अवस्था देखी है, वह पूर्ण ब्रह्मज्ञान की अवस्था है। आध्यात्मिक प्रसङ्ग में उन्होंने उनसे अनेक प्रश्न किये थे और तत्क्षण उन सबके अत्यन्त स्पष्ट और प्रबोधजनक उत्तर पाए थे। मुझे

दिखाने के लिए श्रीयुत गोपीनाथ शोभा माँ के लिखे अनेक पत्र भी लाए थे; उन्हें मैंने देखा। गोपीनाथ जी ने विभिन्न पत्रों में जो सब प्रश्न किये थे, वे सभी साधन-राज्य के नाना सूक्ष्म रहस्यों से सम्बन्धित थे। थोड़े समय की बातचीत में शोभा माँ द्वारा कहे गये जिन सब रहस्यों का पूर्ण मर्म गृहीत नहीं हो सका था, उन सब को स्पष्ट कर लेने के उद्देश्य से ही उन्होंने पत्र पर पत्र लिखे थे। चाहे बातचीत के समय अथवा प्रश्नोत्तर में उन्होंने जो सब उत्तर पाए थे, वे सामान्य शिक्षा-प्राप्त किसी ग्राम्य-बालिका द्वारा देना सम्भव नहीं, वे सब हाई-स्कूल के हेडमास्टर उनके पिता के ज्ञान और धारणा से भी बहुत दूर की वस्तु हैं। इन सब उत्तरों को किसी ने किसी ग्रन्थ से उसे रटा दिया हो अथवा पत्र लिखते समय बोल दिया हो, यह भी असम्भव है; क्योंकि उनकी सब बातें अत्यन्त गम्भीर और प्रत्यक्ष ज्ञान की परिचायिका थीं; यह कोई किताबी बात नहीं।

श्रीयुत गोपीनाथ ने शोभा माँ के साथ बातचीत करके जो सब रहस्य प्राप्त किए उनका यत्किञ्चित् अंश मुझे भी सुनाया। वह सब मेरे लिए इतना नवीन था कि मैंने एक कापी में उसका थोड़ा-थोड़ा भाग नोट कर लिया। बाद में यथास्थान उनका उल्लेख करना होगा, इसलिए यहाँ उन सब की आलोचना का प्रयोजन नहीं समझता।

इसके बाद कुछ दिनों तक शोभा माँ के सम्बन्ध में कोई नया समाचार नहीं मिला, पण्डित गोपीनाथ द्वारा भी कोई पत्रादि नहीं मिला। पूस महीने की बड़े दिन की छुट्टियों में सहसा एक दिन एक पत्र हाथ लगा; उसके लेखक थे पण्डित गोपीनाथ; उन्होंने बरकान्ता से जो लिखा था उसका अभिप्राय इस प्रकार था, "मैं शोभा को देखने के लिए, कई दिन से यहाँ आया हूँ। मेरे साथ काशी से दो-तीन आदमी और आए हैं। आते समय कलकत्ते में आप से मिल न सका। मैं शोभा को काशी ले जाना चाहता हूँ, कलकत्ते में और कहीं रुकने पर आपको उसे देखने की सुविधा नहीं होगी, इसलिए उसे लेकर आपके घर ही रुकने का निश्चय किया है। मेरे साथ शोभा के पिता, माता और दो बच्चों सहित मोटे रूप में छह-सात आदमी रहेंगे। कलकत्ता कब पहुँचूँगा यह बाद में लिखूँगा।"

श्रीयुत गोपीनाथ जी का यह पत्र पाकर मैं एकबारगी प्रफुल्ल हो उठा। किस पुण्य-फल से मेरे इस अयाचित सौभाग्य का उदय हो रहा है यह मैं नहीं समझ पा रहा था। फिर हम कृपापात्र आदमी ठहरे; इसलिए इस व्यापार में मुझे भगवान् की महती कृपा ही दिखाई पड़ी और तुरन्त तार-घर जाकर शोभा माँ के पिता को तार द्वारा सादर निमन्त्रित कर दिया। दो दिनों बाद तार द्वारा ही श्रीयुत सुकुमार बाबू ने

सूचित किया—"हम अमुक दिन चटगाँव मेलगाड़ी से आ रहे हैं।" दिन ठीक-ठीक याद नहीं, २८ या २९ दिसम्बर रहा होगा। अपने घर से किसी को स्टेशन नहीं भेज सका। श्रीयुत गोपीनाथ जी के अनुरोध से अपने वैवाहिक एवं बंगाल-गवर्नमेण्ट की चिह्नाङ्कित स्मारिका वाली—श्रीयुत देवेन्द्र नारायण भट्टाचार्य और हमारे गुरुभाई तथा पुलिस-कोर्ट के प्रख्यात वकील श्रीयुत केदारनाथ भौमिक ने एक मोटर स्टेशन पर भेज दी थी। गाड़ी के स्यालदह स्टेशन पहुँचने के निश्चित समय के बाद भी दो घण्टे बीत गए, फिर भी शोभा माँ वहाँ नहीं पहुँचीं। तब उनके आने के सम्बन्ध में निराश होकर अपने भोजनादि करने का निश्चय कर ही रहा था कि इसी समय रात के ग्यारह बजे के आस-पास दो मोटरों और एक टैक्सी में श्रीयुत गोपीनाथ जी आदि के साथ श्री श्री शोभा माँ मेरे घर के द्वार पर आ पहुँचीं। एक छोटी किशोरी—उलझे बाल, अत्यन्त सीधे-सादे वस्त्र, आँखों में अपूर्व दीप्ति और मुँह पर अनुपम हँसी। 'आओ माँ आओ' कहकर हाथ पकड़ कर माँ को बैठक में ले आया, फूलों की माला गले में पहना दी और प्रणाम किया; किन्तु मन में भक्ति की अपेक्षा स्नेह ही प्रबल था इसलिए व्यवहार भी सामान्यत: वैसा ही हुआ।

माँ के साथ आए उनके पिता सुकुमार बाबू, उनकी माता, बहन सन्ध्या और भाई गौर (दोनों ही बच्चे), श्रीमती उषा देवी (ये सधवा ब्राह्मण-कन्या, बाबा सन्तदास जी की शिष्या और शोभा माँ की विशेष प्रेमिका थीं) महामहोपाध्याय गोपीनाथ जी और काशी के संन्यासी स्वामी शङ्करानन्द।

और साथ आए—बाबा श्री श्री सन्तदास जी का एक तैलचित्र और एक अपेक्षाकृत छोटा फोटो और वृन्दावन आश्रम के श्री श्री राधाकृष्ण मूर्ति-युगल की एक फोटो। एक कमरा खाली करके बाबाजी आदि के चित्र रखे गए और आरती करके भोग तथा शयन कराया गया। तदनन्तर शोभा माँ के साथ हम सबने प्रसाद ग्रहण किया। रात में अधिक वार्ता-विमर्श नहीं हुआ।

इस बार माता जी हमारे साथ केवल सात दिन रहीं। इस बीच उनके दर्शनार्थी बहुत अधिक न होने पर भी नाना सूत्रों से समाचार पाकर आने वाले कम नहीं थे। आने वाले विशिष्ट व्यक्तियों में राय बहादुर खगेन्द्रनाथ मित्र, डाक्टर महेन्द्रनाथ सरकार, अध्यापक हाराणचन्द्र चाकलादार, अध्यापक नृपेशचन्द्र गुह, अध्यापक मणीन्द्रकिशोर चक्रवर्ती, अवकाश प्राप्त जिला जज प्राणकुमार वसु, वकील श्री केदारनाथ भौमिक, अध्यापक नरेशचन्द्र चक्रवर्ती, सुगायक साधक रेवतीमोहन सेन, धर्मप्राण निवारणचन्द्र घोष, रायसाहब कामाख्याकुमार मुखोपाध्याय, नवतरु हालदार,

ज्ञानचन्द्र ब्रह्मचारी इत्यादि उल्लेख्य हैं। श्रीमान् (अब परलोकवासी) सुरेन्द्रनाथ ठाकुर की पत्नी श्रीमती संज्ञा देवी भी प्रायः प्रतिदिन आतीं और माँ से अत्यन्त श्रद्धापूर्ण स्नेह और आदर करतीं थीं। पण्डितप्रवर राजेन्द्रनाथ घोष के साथ भी इसी बार एक दूसरे मकान में माँ की भेंट हुई। सभी जानते हैं कि घोष महोदय अद्वैतवादी हैं और माँ द्वैताद्वैतवादिनी। घोष महोदय ने बाबा श्री श्री सन्तदास जी के साथ उनकी जीवितावस्था में बहुत तर्क-वितर्क किया था; उस दिन माँ के साथ किञ्चित् आलोचना मात्र की थी। वे ज्योतिष और सामुद्रिक विद्या में भी निष्णात हैं। दो वर्ष पूर्व शिशिर बाबू के मुँह से माँ की अवस्था का यत्किञ्चित् विवरण सुनकर, उनके जीवन में सचमुच उस प्रकार का असाधारण योग है या नहीं—यह परीक्षा द्वारा जानने के लिए उन्होंने माँ की जन्म-कुण्डली की नकल भेज देने के लिए शिशिर बाबू को लिखा था; और बाद में उसकी परीक्षा करके उस विषय में अपना मत भी अंग्रेजी तारीख २०-१-३७ को शिशिर बाबू को लिखे गए एक पत्र में प्रकट कर दिया था। यह पत्र मैंने देखा है, उसका थोड़ा-सा अंश यथास्थान उद्धृत किया जायगा। उसके बाद २-११-३७ तारीख को उन्होंने माँ को एक पत्र लिखा; उसमें आठ शास्त्रीय और छह व्यक्तिगत प्रश्न थे। माँ ने उनके उत्तर दिए। उसके बाद उन्होंने तीन और पत्र लिखे थे और उत्तर भी पाए थे। घोष महोदय के ये सब पत्र मैंने देखे नहीं। दोनों का प्रत्यक्ष परिचय इसी बार हुआ। सुना है, माँ के साथ कुछ क्षण बातचीत के बाद उन्होंने माँ के हाथ की हस्त-रेखाएँ भी देखी थीं और उसमें भी उनके असाधारणत्व का परिचय पाया था।

पण्डितप्रवर घोष महोदय ने इस बार माँ से दो व्यक्तिगत प्रश्न किए थे। प्रथम–"मैं वेदान्त दर्शन-सम्बन्धी एक पुस्तक लिख रहा हूँ; इसे पूर्ण कर सकूँगा या नहीं?"

उत्तर—"मैं कभी इस प्रकार के प्रश्न का उत्तर नहीं देती।"

द्वितीय प्रश्न—"मैं संन्यास ले सकूँगा या नहीं?"

उत्तर—"वास्तविक संन्यास तो मन का व्यापार है।"

बहुतेरे जानते हैं कि श्रद्धास्पद घोष महोदय ने बाद में रामकृष्ण मिशन में योगदान द्वारा संन्यास ग्रहण किया और स्वामी चिद्घनानन्द के नाम से परिचित हुए। 'बालिका' की शेषोक्त उक्ति को उन्होंने किस रूप में ग्रहण किया था, विदित नहीं। लेकिन वह गम्भीर अन्तर्दृष्टि की परिचायक और सन्यास के लिये उत्सुक व्यक्ति के लिये विशेष रूप से विचारणीय थी, इसे सभी स्वीकार करेंगे।

एक सप्ताह बाद—जहाँ तक स्मरण है, ५ जनवरी (१९३९) को महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज श्री श्री शोभा माँ और उनके साथ के सब लोगों को लेकर काशी चले गये। उनके अपने घर पर सब अतिथियों को रहने में असुविधा होगी, यह समझकर उन्होंने एक दूसरा घर किराए पर लेने की व्यवस्था कर दी थी। उनकी इच्छा थी कि माँ को मैं वहीं दो-तीन महीने रखकर उनके आध्यात्मिक ज्ञान का सारा विवरण लिखकर जिज्ञासु संसार को उपहार दूँगा दूसरे, काशी के साधनशील 'मर्मी' जन उन्हें देखने और उनके साथ यथेष्ट विचार-विमर्श की सुविधा भी पा जायेंगे। किन्तु श्री श्री अन्नपूर्णा और विश्वनाथ जी की इच्छा कुछ और ही थी। इसलिए पं० गोपीनाथ काशी पहुँचने के दो-चार दिनों के भीतर ही कष्टदायी वातरोग (Sciatica) से शय्या की शरण लेने को मजबूर हुए। उन्होंने माँ के लिए हरिश्चन्द्र घाट रोड पर किराए पर मकान ले रखा था। उनका मकान सिगरा नामक मुहल्ले में है। दोनों में एक कोस या इससे भी अधिक दूरी होगी। पं० गोपीनाथ को उठने में अशक्त और माँ की देख-भाल में असमर्थ देखकर तथा इस थोड़े समय में ही भिन्नरुचि और भिन्न संस्कार के कितने ही व्यक्तियों के बीच एक विरोधी भावना का संकेत पाकर माँ की माताजी ने स्वामी की अनुपस्थिति में माँ और विशेष रूप से दो बच्चों को लेकर पं० गोपीनाथ के घर से इतनी दूर रहने का साहस नहीं किया। केवल इसीलिए आठ-नौ दिन काशी में रहकर सुकुमार बाबू सब को लेकर कलकत्ते लौट आए। श्रीयुत गोपीनाथ अवश्य ही इससे बड़े मर्माहत हुये थे; किन्तु उनकी उस समय की अवस्था में और दूसरी गति नहीं थी। बाद में देखा गया था कि पं० गोपीनाथ की बीमारी बहुत दिन टिकने वाली है तथा इस समय उनके शरीर में एक अपेक्षाकृत कठिन शल्योपचार (Major operation) की आवश्यकता हैं। अतः यदि शोभा माँ काशी में दो माह और रह जातीं तो भी पं० गोपीनाथ की सारी परिकल्पना का कार्य रूप में परिणत होना सम्भव नहीं था। इधर परमात्मा ने माँ के लिए कलकत्ते में पहले से ही एक कर्म-क्षेत्र प्रस्तुत कर दिया था।

माँ जिस समय काशी गईं; मैंने उन्हें कुछ दिन और अपने घर पर रखने के लिए व्यग्रता दिखाई थी। उन्हें छोड़ने में मन को वस्तुतः कष्ट ही हुआ था। माँ ने काशी से लौटकर मुझसे कहा, "इस बार आप जितने दिन रहने को कहेंगे, रहूँगी। कहिये मैं कब जाऊँगी?" पहले ही कह चुका हूँ कि मैं कृपावादी हूँ। माँ की उक्ति से अपने जीवन में बारम्बार अनुभूत कृपा का ही एक और परिचय मिला और मैंने कहा, "जाने की बात क्या आज ही? जब जाने का समय आएगा, तब बताऊँगा।"

इसी प्रकार की कुछ और हास-परिहास-मिश्रित बातें हुईं। रहना तो ठीक ही था, जाने के दिन के निर्धारण का प्रस्ताव मैंने दबा रखा। माँ से कहा, "कलकत्ते के लोग जितने दिन तुम्हें चाहेंगे, उतने दिन किस प्रकार तुम उन्हें छोड़कर जाओगी?" सुकुमार बाबू को भी, कह-सुनकर माँ को कुछ दिन रुकने के विषय में राज़ी कर लिया। वे अकेले अपने कर्म-स्थल बरकान्ता चले गए। अनुरोध करके कह भी गए कि माँ को पन्द्रह दिन से अधिक न रखा जाय। हाँ, इस विषय में मैंने उन्हें वचन नहीं दिया था। सच तो यह है कि माँ की कृपा और उनके पिता के सौजन्य से मैं धन्य हो गया। कृपामयी माँ ने इस दीन के घर का 'कृपाकुञ्ज' नाम सार्थक कर दिया। इससे प्रायः डेढ़ मास तक आनन्द का मेला चला। स्त्री-पुरुष, युवक-वृद्ध, पण्डित-मूर्ख, वकील-एटर्नी, डाक्टर-हाकिम, दार्शनिक-वैज्ञानिक, कवि-गायक, छात्र-अध्यापक, धनी-निर्धन, स्वस्थ-अस्वस्थ, विशिष्ट-साधारण—सभी श्रेणियों के सैकड़ों व्यक्तियों ने माँ के दर्शन और उनके साथ अबाध रूप में नाना प्रकार की धर्म चर्चा करने अथवा उनके श्रीमुख से उसी प्रकार के प्रसङ्ग सुनने का सुयोग पाया था। वे सब बातें बाद में थोड़ी-बहुत कही जायँगी। इस समय कुछ पूर्वकथा पहले कहना आवश्यक प्रतीत होता है। "नामूलं लिख्यते किञ्चिन्नानपेक्षितमुच्यते।" बिना जड़-मूल के कुछ लिखा नहीं जायगा, जिसे सुनने में लोगों का आग्रह नहीं, ऐसा कुछ भी कहा नहीं जायगा।

इस पूर्व कथा का मूल है श्रीयुत सुकुमार बाबू की डायरी। सुकुमार बाबू ने कन्या की अवस्थाविशेष के विकास की सूचना से लेकर अन्त तक उसके कार्य-कलाप का प्रतिदिन का विवरण चार कापियों में लिख रखा था। इन कापियों में कई-एक वे मेरे अनुरोध पर मेरे पास रख गये थे। इस डायरी के सम्बन्ध में इस जगह एक बात बता देना आवश्यक समझता हूँ। सुकुमार बाबू शिक्षित व्यक्ति हैं; धर्म-विश्वासी होने पर भी अंग्रेजी-वालों के चित्त में साधारणतः जिस प्रकार की संशय-प्रवणता होती है, वह भी उनमें यथेष्ट मात्रा में थी। पिता होने पर भी शुरू से बहुत दिनों तक वे कन्या की प्रकृत अवस्था के सम्बन्ध में किसी की अपेक्षा कम सावधान नहीं थे। और पद-पद पर अविश्वास या सन्देह और परीक्षा भी कम नहीं की। इसका प्रमाण उनकी डायरी के पन्ने-पन्ने पर मुझे मिला है। इस डायरी का कुछ अंश उन्होंने मेरी ही बैठक में रायबहादुर श्रीयुत खगेन्द्रनाथ मित्र आदि को पढ़कर सुनाया था। उनमें भी बहुतों ने यही सम्मति प्रकट की थी। उनकी पत्नी भी माता के स्वाभाविक स्नेहवश किसी अमङ्गल की आशङ्का से सदैव कन्या के प्रति उद्वेगमयी

सतर्क दृष्टि रखतीं और जिस समय जो भी लक्ष्य करतीं उसे स्वामी को कह देतीं। श्रीयुत शिशिर बाबू की भी स्वतन्त्र डायरी है, उसमें घटनाओं की अपेक्षा तत्त्व-कथाएँ अधिक हैं। इसी डायरी को महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने हरिद्वार में देखा। मैंने उसका कोई-कोई अंश सुकुमार बाबू की डायरी में उद्धृत देखा है। शिशिर बाबू की पूरी डायरी मैंने नहीं देखी है। प्रस्तुत प्रयोजन में उसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं है। शिशिर बाबू ने मुझे बताया था–"मैंने शोभा से जो सब प्रश्न किए थे वे किसी दूसरे व्यक्ति के लिये, नहीं किए थे," कुछ-कुछ उनकी परीक्षा लेने के लिए, और कुछ अपने कुतूहल को शान्त करने के लिए किए थे। जो हो, कथा-क्रम में उनकी डायरी की अनेक बातें अवश्य ही आ जायँगी।

दो

श्री श्री शोभा माँ का जन्म शुभ १८४२ शकाब्द के १४ वें फागुन शनिवार की रात में २६ दण्ड मकर लग्न में कृष्ण पक्ष की पञ्चमी तिथि को स्वाती नक्षत्र की तुला राशि में हुआ। बँगला सन् १३२७; अंग्रेजी १९२१ फरवरी मास। पाठकों में यदि कोई फलित ज्योतिष में अभिज्ञ या उसके अनुरागी हों, तो उनके कुतूहल की शान्ति के लिए माँ की जन्म-कुण्डली जैसी मैंने पाई है, अविकल यहाँ दे रहा हूँ—

शु० २७
मं० २६
के० १
सू० २४
बु० २४
लं०
बृ० १२
चं० १५
श० १२
रा० १५
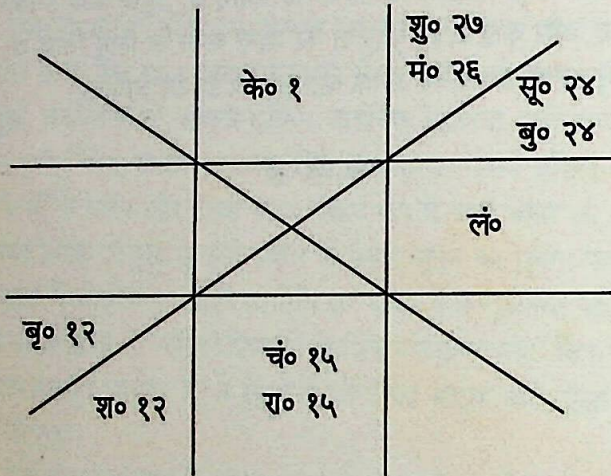
शोभा माँ को देखने के पहले उनकी जन्म-कुण्डली का विचार करके पण्डितप्रवर राजेन्द्रनाथ घोष महोदय ने शिशिर बाबू को एक पत्र इस प्रकार लिखा—

"उनके जीवन में दैवानुग्रह है। इस अनुग्रह की मात्रा नितान्त अल्प नहीं है, यह समझ लीजिए। उन्होंने धर्म के लिए ही जन्म लिया है। उनके जीवन का उद्देश्य ही है धर्म-साधना। यह उनके जन्म अर्थात् लग्नाधिपति शनि के प्राय: पूर्णबली और तुंगाभिलाषी होकर नवम धर्म-स्थान पर रहने का फल है। इस फल के आधिक्य एवं वैशिष्ट्य का कारण पूर्णबली विद्याधिपति और कर्माधिपति शुक्र की पूर्ण दृष्टि तथा मित्राधिपति और आयाधिपति बलवान् मङ्गल ग्रह की उक्त शनि पर पूर्ण दृष्टि है। शनि कठोर तपस्या-जनक हैं, शुक्र कवित्व और सूक्ष्म विज्ञान सम्मत बुद्धि के जनक हैं तथा मङ्गल सुदृढ़ निश्चय और तर्कशक्ति के जनक हैं। अत: शोभा माता में तीव्र धर्म-परायणता के साथ कवि-कल्पना, विज्ञान-सम्मत सूक्ष्म दृष्टि और सुदृढ़ युक्तिसङ्गत भाव पूर्ण मात्रा में मिले-जुले रहेंगे।

श्री श्री माँ की माता जी

उसके बाद ही शुक्र और मङ्गल व्यय या त्यागाधिपति हैं और बल पराक्रम तथा भातृभाव के अधिपति धर्मगुरु बृहस्पति के क्षेत्र में अवस्थित हैं और उसी धर्मगुरु बृहस्पति के द्वारा त्रिपाद दृष्टि प्राप्त करके वेदान्त-वेद्य ब्रह्म विषयक ज्ञान-वृद्धि में विशेष सहायक होगें। अत: इसके धर्मभाव में कठोर तपस्या, धर्म प्रवणता, तर्कबुद्धि-सिद्ध मीमांसा और ब्रह्मविषयक ज्ञान और ज्ञानमिश्र भक्ति—ये अनेक भाव प्रकाशित होंगे। शनिग्रह के इन सभी भावों के साथ मिलकर धर्म-परायणता में साधक होने पर शोभा माता में भावान्तर आ जाता है, वह दैवानुग्रह है; यह चित्त-विकारादि किसी प्रकार का हेय भाव नहीं है। ये निष्पाप शरीर हैं और देहान्त पर अति उत्तम स्वर्ग जायँगी, यह मृत्यु-स्थान में स्थित बृहस्पति का फल समझिए। पत्र में इस विषय में अधिक नहीं लिखा जा सकता। इनके माता-पिता धन्य हैं जिन्होंने इस प्रकार की पुत्री पाई है।"

घोष महोदय के पत्र में आयु इत्यादि के सम्बन्ध में भी कुछ आलोचना थी, किन्तु कोई सुनिश्चित सिद्धान्त नहीं था। उन्होंने लिखा था कि इस विषय में विशेष विचार समय-सापेक्ष है।

शोभा माँ के पिता का नाम पहले ही बताया जा चुका है। उनका निवास त्रिपुरा ज़िले के ब्राह्मणवाड़िया मुहकमे के अन्दर कोण्डा नामक गाँव में था। जाति के क्षत्रिय; वंश अपने समाज में प्रतिष्ठित। शोभा माँ के नाना का नाम योगेन्द्रमोहन पालित था; ये पहले वकील थे, बाद में श्रीहट्ट जिले के हविगंज मुहकमे के अन्तर्गत बनियाचंग के खाँ बहादुर वार्ड स्टेट के मैनेजर हो गए थे। इनका निवास हविगंज मुहकमे के कोराव गाँव में था। यह गाँव श्री श्री सन्तदास बाबाजी महाराज के जन्म-स्थान वामै गाँव से पाँच मील दूर है। पालित महोदय के साथ बाबाजी महाराज की मित्रता थी और वृद्धावस्था में भी (बंगला १३३८ साल) हविगंज से जब वे बनियाचंग गये थे तो थोड़ी देर के लिए पालित महोदय के घर जाकर उनका और शोभा माँ के पूरे परिवार का प्रणाम लेकर आये थे। बाबाजी महाराज के साथ शोभा माँ की यही प्रथम भेंट थी।

शोभा माँ के बचपन की और कोई उल्लेख-योग्य घटना मैंने नहीं सुनी। किन्तु जन्म-समय की एक घटना उनके पिता के एक पत्र द्वारा मुझे मालूम हुई। इस समय वे (सुकुमार बाबू) हविगंज में 'न्यू हाई स्कूल' नामक एक नव-स्थापित उच्च (अंग्रेजी) विद्यालय के प्रधानाध्यापक थे। शोभा माँ का जन्म अपने ननिहाल बनियाचंग गाँव में हुआ था। जिस रात में जन्म हुआ, उसी के पिछले पहर में हविगंज में सुकुमार बाबू के बड़े भाई शचीन्द्र बाबू की पत्नी ने स्वप्न देखा कि

सुकुमार बाबू के शयन-कक्ष में एक आसन के ऊपर श्री श्री काली माता का जो चित्र सर्वदा रहता था, उसी चित्र से जैसे काली माता एक शिशु होकर मिट्टी पर उतर आई हैं। उनका सारा शरीर धूल और कीचड़ से सना हुआ है। सुकुमार बाबू जैसे चित्र-फलक पर उन्हें न देखकर इधर-उधर खोजते-खोजते थक गए। सहसा उनकी दृष्टि शिशु पर पड़ी और उसका एक हाथ पकड़ कर भाभी से बोले "देखिए, यह पगली कहाँ से धूल-कीचड़ लपेट लाई है।" यह कहकर सुकुमार बाबू ने जैसे बालिका को गोद में उठा लिया, और इसी समय उनकी नींद खुल गई। स्वप्न का विवरण प्रभात काल में ही सुकुमार बाबू को बताकर उनकी भाभी ने कहा, "इस बार कन्या ही होगी।" डेढ़-एक घण्टे के बाद बनियाचंग से समाचार मिला — कन्या हुई है। क्या स्वप्न सब ही निर्मूल चिन्ता मात्र होते हैं? इस स्वप्न के सम्बन्ध में उसी चिरन्तन प्रश्न का उत्तर पाठक स्वयं बाद में देंगे।

माँ के आध्यात्मिक उत्कर्ष का विकास बाह्य दृष्टि से बंगला १३४२ साल के अगहन मास के अन्तिम भाग से आरम्भ हुआ। उस समय उनकी आयु पूरे पन्द्रह वर्ष की नहीं हुई थी। इसके कुछ दिन पहले मूर्च्छा या हिस्टीरिया रोग के समान एक अवस्थान्तर देखा गया था। उस समय भी उन्हें अपनी छाती पर 'ओम्' और 'माँ' ये दो शब्द अँगुली से लिखते उनके स्वजनों ने देखा था। बाद में स्पष्ट विदित हुआ कि यह अवस्था वस्तुतः कोई व्याधि-जनित विकार नहीं है; सच तो यह है कि तभी उन्होंने साधना-राज्य की प्रथम भूमि पर आरोहण किया था। इसी भूमि में आगे वर्णनीय अवस्था-समूह का विकास हुआ था। इस सम्बन्ध में पण्डितप्रवर राजेन्द्रनाथ घोष महोदय का कुण्डली-विचार से प्राप्त मत भी (जो ऊपर दिया जा चुका है) स्मरणीय है — "शनिग्रह का इन सब भावों के साथ मिलकर धर्म-परायणता में साधक होने से, शोभा माता का जो भावान्तर होता है, वह दैवानुग्रह ही है। वह चित्त-विकारादि-स्वरूप कोई हेय भाव नहीं है।"

पन्द्रह वर्ष की ग्राम्य-बालिका की शिक्षा जिस प्रकार की होती है, बालिका शोभा की शिक्षा भी उसकी अपेक्षा किसी विशेष-उन्नत प्रकार की हुई थी, इसका कोई प्रमाण नहीं है। मैंने जब उन्हें देखा था तब वे अंग्रेजी के दो-चार शब्द मात्र जानती थीं; बँगला में बातें समझाकर लिख सकती थीं; हाँ, वर्णों की अशुद्धि होती थी। बात को समझाकर लिखने की क्षमता विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है; क्योंकि लम्बे और बहुत गम्भीर विषय-पूर्ण पत्र भी केवल एक बार पढ़कर सभी जिज्ञासित विषयों का उत्तर समुचित रूप से समझाकर काफी शीघ्रता से लिखते मैंने उन्हें देखा है। यह क्षमता साधना से पूर्व रहनी सम्भव नहीं है। सम्भवतः बाद में प्राप्त पर-

श्री श्री माँ के पिता जी
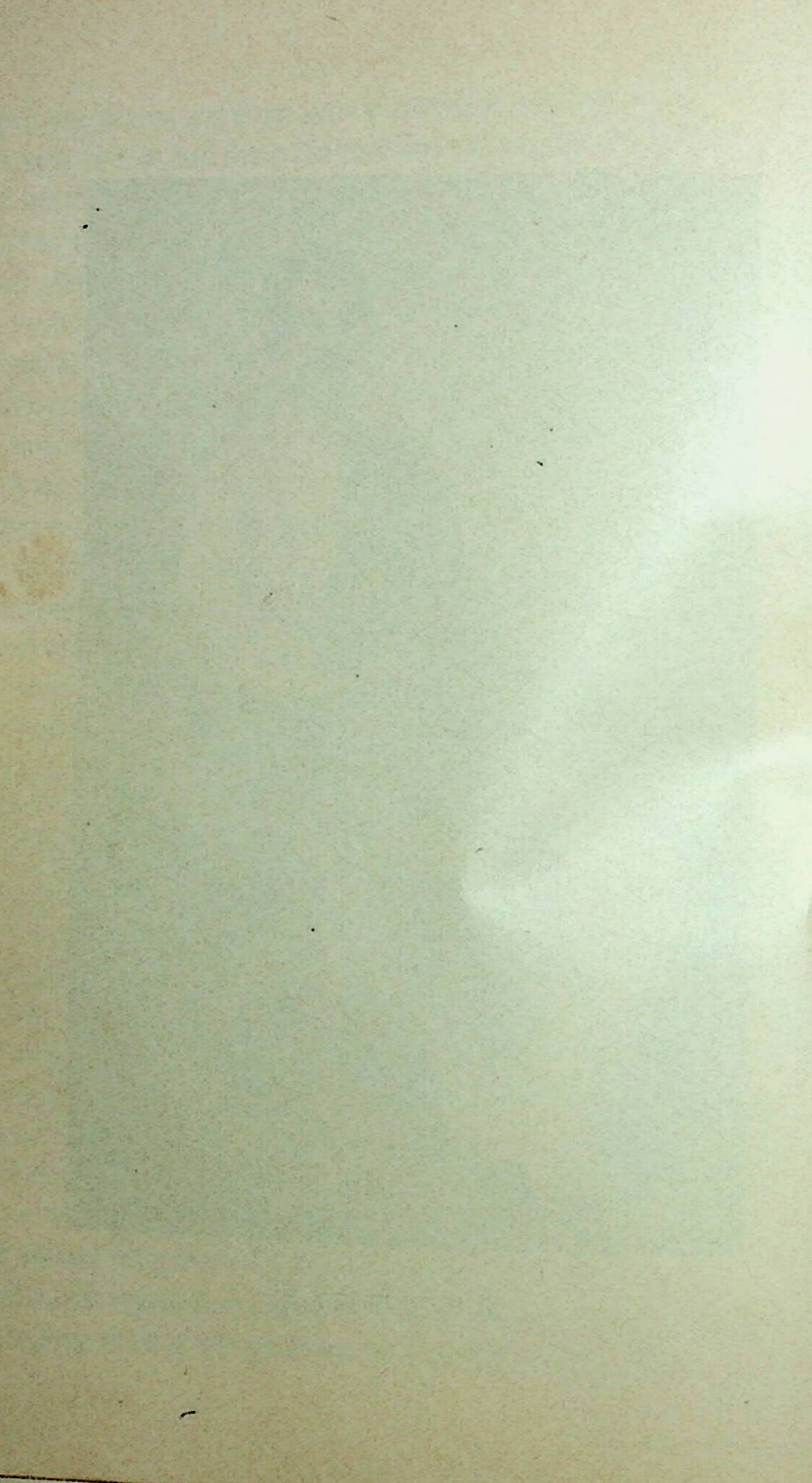
चित्तज्ञता का फल है।

कोण्डा का राहा-परिवार पुरुषानुक्रम से आनुष्ठानिक शाक्त परिवार था। वंश की परम्परानुसार, और पूर्वजन्म के विशिष्ट संस्कारवश, श्रीयुत सुकुमार राहा बाल्यावस्था से काली भक्त रहे। वे सात-आठ साल की अवस्था में ही मातृ-हीन हो गये थे। इसके कतिपय दिनों बाद उन्हें किसी ब्राह्मण से काली माता का एक चित्र मिल गया। उसे उन्होंने एक आसन पर रख दिया था और बचपन से ही इस चित्र का पैर धोकर चरणामृत-पान किया करते थे। यह चित्र बराबर उनके घर में एक आसन पर स्थापित था अरै अब भी है। दीक्षा ग्रहण करने के पहले वे इस चित्र के चरणों में रक्तचन्दन लगाते थे; बाद में उन्होंने बन्द कर दिया था, किन्तु चित्र आसन से हटाया नहीं। इस विषय में आगे कुछ और सुनने को मिलेगा। छात्रावस्था में छात्रावास में भी माँ काली का एक चित्र सुकुमार बाबू के साथ रहता था। वे इसे प्रणाम करके ही अन्य सब कार्य करते थे। परीक्षा देने जाते समय अपनी कलम चित्रगत माँ काली के चरणों से स्पर्श कर दिया करते थे। किन्तु ब्रजविदेही बाबा सन्तदास जी के परलोक-वास के कुछ दिन पहले अर्थात् बंगाब्द १२४२ के आषाढ़ मास के अन्तिम भाग में सुकुमार बाबू ने कुमिल्ला में उनका दर्शन किया और उनके प्रति विशेष आकृष्ट हुये, साथ ही अपने सारे परिवार को दीक्षा देने की उनसे प्रार्थना की। आषाढ़ की अट्ठाईसवीं तिथि को सब दीक्षित हुए। आश्चर्य की बात यह कि उन्होंने पहले ९-१० बजे उनकी कन्या शोभा को 'नाम' दिया, उसके बाद बारह बजे के लगभग माता-पिता को दीक्षा दी। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि बाबा श्री सन्तदास जी के सम्प्रदाय में 'नाम' देना और 'दीक्षा' देना दो स्वतन्त्र व्यापार हैं; दोनों में थोड़ा अन्तर है। 'नाम' देने में केवल नाम दे दिया जाता है, बीज नहीं दिया जाता; किन्तु 'दीक्षा' देने में नाम और बीज दोनों ही दिये जाते हैं। दोनों के अनुष्ठान भी भिन्न हैं। 'नाम' ग्रहण करने में तिलक धारण नहीं करना पड़ता—हाँ, तिलक लगाने का निषेध भी नहीं है। लेकिन गुरु ऐसा आदेश नहीं देते; माला धारण करने के लिए जब गुरु निर्देश करते हैं तभी वह धारण की जा सकती है। किन्तु दीक्षा ग्रहण करने में माला और तिलक दोनों का धारण करना आवश्यक है। दोनों व्यापारों में शक्ति का भी अन्तर होता है; दीक्षा की शक्ति अधिक है। किन्तु शोभा माँ कहती हैं कि यदि सद्गुरु केवल 'नाम' ही दें तो भी अन्त तक सम्पूर्ण फल मिल सकता है। जो हो, ऐसा प्रतीत होता है कि बालिका समझ कर ही गुरु महाराज ने शोभा माँ को केवल 'नाम' ही दिया था। अथवा हो सकता है कि इसके बाद वे इस बालिका को लेकर अनेक खेल करेंगे, इसलिए पहले नाम देकर केवल चिह्नित मात्र कर

दिया हो। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि गुरु ने माता-पिता के सम्बन्ध-बल से पुत्री को दीक्षा नहीं दी; पहले पुत्री को ही शिष्या बनाकर उसके सम्बन्ध-बल से माता-पिता को दीक्षा दी थी। यह उलट-फेर गुरु ने जान-बूझकर किया था, यह बाद में ज्ञात हुआ।

अस्तु, अब से सुकुमार बाबू की डायरी का अनुसरण करते हुए चलूँगा।

बँगला १३४२ साल, २४ अगहन (अं० सन् १९३५; दिसम्बर) मङ्गलवार की रात के आठ बजे सुकुमार बाबू अपने गुरु-भाई डॉ० सतीशचन्द्र नन्दी के घर पर बैठकर गीता-पाठ कर रहे थे; इसी समय उनके घर से उनके एक पुत्र सबुज ने अस्त-व्यस्त रूप में आकर उन्हें तुरन्त घर चलने को कहा। सुकुमार बाबू ने घर लौटकर देखा कि उनके गुरु महाराज की फोटो के सामने शोभा माँ नेत्र निमीलित कर मानों ध्यान-मग्न हैं। उनकी आँखों से जल-धारा प्रवाहित है, होंठ काँप रहें हैं और शरीर भी कम्पित है। इसके कई वर्ष पूर्व शोभा माँ को हिस्टीरिया के समान एक बीमारी या अवस्था हुई थी। सुकुमार बाबू ने सोचा कि यह उसी रोग का फिर दौरा हुआ है। भूतावेश सोचकर भी डरे और इसीलिए वे और उनकी पत्नी ज़ोर-ज़ोर से नाम लेने लगे। शोभा माँ भी बड़-बड़ करके कुछ बोल रही थीं। दो-बातें समझ में आई थीं—"मैं नहीं कर सकती," और "समय नहीं मिलता।" बड़ी देर बाद इस अवस्था के बीत जाने पर उनसे पूछने पर यह विदित हुआ—

शोभा माँ पिता की चारपाई पर बैठकर पढ़ रही थीं; आलस्य आने पर सो गईं। इसी समय एक स्निग्ध उज्ज्वल प्रकाश से सारा घर प्रकाशित हो उठा और साथ-ही-साथ बाबा सन्तदास जी की मूर्ति प्रकट हुई। उन्होंने शोभा माँ को पूजा-गृह में जाने को कहा और वहाँ शोभा माँ ने उन्हीं के निर्देशानुसार उनकी पूजा की।

इसके पहले शोभा माँ केवल पाँच-सात मिनट नाम लेती थीं; सो भी विशेष निष्ठा के साथ नहीं। इसीलिए सुकुमार बाबू ने पुत्री से कहा, "विधिवत् तू नाम नहीं लेती, इसीलिए समझता हूँ, बाबा ने तुझे खूब फटकार दी हैं!" कन्या ने उत्तर दिया, "फटकार? या कितना स्नेह किया है, यदि आप देखते!"

इसके दूसरे दिन अर्थात् अगहन की २५ वीं तिथि को शोभा माँ ने बाह्यज्ञान-रहित भाव से दो घण्टे तक बैठकर नाम-जप किया। इसके पहले उन्होंने पिता के निर्देशानुसार बाबाजी महाराज की मङ्गलारती की थी। नाम-जप के बाद शोभा माँ ने कहा, "बाबाजी महाराज ने कहा है, 'उस प्रकार से मङ्गलारती नहीं की जाती,' इसके बाद जिस प्रकार से की जाती है, वैसा स्वयं करके उन्होंने दिखा दिया।" उसी

दिन संध्या को जप के समय उन्हें गुरु जी के आसन के सामने अपना आँचल बिछाते देखा गया। जप के अन्त में विदित हुआ, बाबाजी महाराज ने आकर अपने पैर रखने के लिए आसन के नीचे कुछ बिछा देने को कहा था। २६ तारीख को उस स्थान पर एक आसन ही रखा गया था, उस दिन शोभा माँ को इस रूप में पूजा करते देखा गया जैसे गुरु ने उस पर पैर रखे हों। शोभा माँ ने कहा कि मैंने जिन फूलों से पूजा की, वे गुरु जी ने ही दिए थे, हाँ, ये फूल अवश्य दूसरों के लिए अदृश्य थे। उस दिन गुरु जी उनसे कह गए थे कि तुम मुझे देखकर डरो नहीं; उनका स्थूल शरीर नहीं है, किन्तु वे हैं।

२७ तारीख को कई एक भयङ्कर आकार के लोगों ने आकर शोभा माँ को डराया। ज्यों ही उन्होंने गुरु का स्मरण किया वे सब भाग गए।

२८ तारीख को देखा गया, जैसे शोभा माँ गुरु जी के पाँव पलोट रही हों। पूजा के बाद उन्होंने कहा, बाबाजी महाराज ने पैर पलोटने को कहा था। इस दिन की डायरी में सुकुमार बाबू ने लिखा है, "शोभा नाम-जप के लिए बैठी, कुछ देर नाम-जप किया; फिर सम्भ्रम से घुटने टेक कर प्रणाम किया; समझता हूँ, उसी समय गुरु का आविर्भाव हुआ। इसके बाद उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। कभी-कभी बड़-बड़ करके कुछ कहती थी, फिर चुपचाप। अन्त में अञ्जलि, पैर पलोटना—यह सब हुआ।"

२९ वीं तारीख को बाबा जी महाराज के साथ 'दादा गुरु जी' अर्थात् श्री रामदास काठिया बाबा आकर आसन पर विराजमान हुए। उन्होंने कोई बात नहीं कही, बाबाजी ने ही बात शुरू की। इसी दिन रात में बाबा जी के साथ उनके पूर्वाश्रम की स्त्री दिखाई पड़ीं। उन्होंने भी कोई बात नहीं की। गुरु-माता का विवरण शोभा माँ ने जिस रूप में दिया, उससे सुकुमार बाबू को विश्वास हो गया था कि शोभा माँ ने सचमुच ही देखा है। उन्होंने दीक्षा के बहुत साल पहले (अं० सन् १९१३-१४ में) कलकत्ते के ४७ नं० बोसपाड़ा लेन में उन्हीं के घर में उन्हें देखा था और उस समय उनकी भावी गुरु-माता ने अपने हाथ से उन्हें जलपान दिया था।

शोभा माँ किस प्रकार जपपूजा, अर्चना आदि करती थीं उसे उन्होंने २९ तारीख पौष की रात में पूछने पर यह कहा था, "जब मैं आसन पर बैठकर बाबा जी का दिया हुआ नाम-जप आरम्भ करती हूँ तो २-१ मिनट के बाद फिर मेरी जिह्वा से उच्चारण नहीं होता किन्तु भीतर अपने-आप नाम-जप होता रहता है। तब सहसा बाबाजी महाराज के दर्शन होते हैं। उनके आसन पर बैठ जाने के थोड़ी देर

बाद में उनकी गोद में अपना सिर रख देती हूँ, तब भी भीतर नाम-जप चलता रहता है। जिस दिन वे मेरे सिर पर हाथ रख देते हैं, उस दिन मेरी देह अवश हो जाती है। उसके बाद क्या होता है, मैं कुछ नहीं कह सकती; इस प्रकार का आनन्द-बोध होता है जिसका वर्णन किया नहीं जा सकता। कुछ क्षणों बाद मैं बाबा जी की गोद से सिर उठा लेती हूँ और फिर सीधी बैठकर नाम-जप करने लगती हूँ। अन्त में मेरे सिर के ऊपर राधा-कृष्ण की युगल-मूर्ति जगमगाने लगती है। बाबा इस मूर्ति को आसन पर स्थापित करने को कहते हैं। तब मैं इसे हाथ से उठाकर आसन पर रखती हूँ। ऐसे ही मुझे दादा गुरु जी और एक शालग्राम जी आसन पर दिखाई पड़ते हैं। तब बाबा खड़े रहते हैं और उनकी पूजा करने को कहते हैं; किस प्रकार पूजा करनी होगी, यह भी बता देते हैं। पूजा के बाद भोग देती हूँ, अञ्जलि देती हूँ, आरती करती हूँ और चरणामृत-पान करती हूँ। फूल, धूप, दीप, भोग की सामग्री सब हाथ के पास ही पा जाती हूँ। अञ्जलि का फूल बाबा मेरे हाथ में उठाकर देते हैं। पूजा के उपरान्त प्रणाम करने को कहते हैं; फिर कहते हैं, 'जाओ।' तब आँखे खोलकर देखती हूँ, किन्तु वह सब कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। अञ्जलि के फूलों में से केवल अड़हुल का फूल बाग में देखती हूँ और कोई भी फूल बाग में दिखाई नहीं पड़ता। प्रसाद में क्या अपूर्व स्वाद है ! मन में जो भी प्रश्न उपजता है, बाबा जी बिना पूछे ही उत्तर दे देते हैं।"

पौष की २४ वीं तिथि को शोभा माँ ने कहा, समाधि के समय पाँच महापुरुष आए थे, उनका चेहारा देखते ही भक्ति जगी। बाबाजी ने पूछा, "तुम इन लोगों से मन्त्र लेना चाहती हो?" शोभा माँ ने कहा, "नहीं, आप ने जो मुझे दिया है वही चाहती हूँ।" आज एक छोटा काला बालक भी बाबा जी के साथ आया था। बाबाजी ने शोभा माँ से कहा, "तुझे यह लड़का देता हूँ।" शोभा माँ ने कहा, "मैं लड़का लेकर क्या करूँगी?" बाबा जी ने कहा, "इसके हाथ में मक्खन दो, देते ही यह नाचने लगेगा।" शोभा माँ ने मक्खन दिया और लड़का प्रसन्न होकर नाचने लगा। कितना सुन्दर दृश्य था! थोड़ी देर बाद शोभा माँ ने देखा, बालक अदृश्य हो गया है।

पौष की २६ वीं तिथि को शोभा माँ की पूजा के आसन पर सहसा कालीमाता की मूर्ति दिखाई पड़ी। बाबाजी ने शोभा माँ से पूछा, "तुम इन्हें पहचानती हो?" शोभा माँ ने उत्तर दिया, "पहचानती हूँ, मेरे पिता जी पहले इन्हीं की पूजा करते थे।" थोड़ी देर बाद कालीमाता शोभा माँ को आशीर्वाद देकर चली गईं। इस दिन पूर्वोक्त छोटा बालक दो बार आया और मक्खन पाकर नाचा। बाबाजी ने कहा,

"इसका नाम है, जादुवाछाधन।" (डायरी में यह पढ़कर नरोत्तमदास का "यशोदा ने नाम रखा जादुवाछाधन" यह पद्यांश याद पड़ता है।)

पौष की २७ वीं तिथि को बाबा जी महाराज ने शोभा माँ से कहा, "अब से ठाकुर जी तुम्हें शिक्षा देंगे। गुरु-कृपा समाप्त हुई और ठाकुर जी की कृपा का आरम्भ हुआ।" रात में फिर इसी बात को और समझाकर कहा, "पहले गुरु कृपा करते हैं, उनके द्वारा काफी आगे बढ़ा देने पर ठाकुर जी भार ले लेते हैं।"

पौष की २८ वीं तिथि को प्रात: काल पहले श्री श्री राधाकृष्ण आसन पर आ विराजे, फिर बाबा जी आसन पर बैठे।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार का दर्शन केवल शोभा माँ को ही होता था, और किसी को कुछ नहीं दिखाई पड़ता था; अन्य लोग तो केवल शोभा माँ की अङ्ग-भङ्गी ही देख पाते थे। शोभा माँ के दर्शन-श्रवणादि का जो विवरण उनके पिता की डायरी से उद्धृत किया गया है वे भी शोभा माँ की बातें हैं, यह समझना चाहिए।

श्रीकृष्ण ने कहा, "मेरे पैर पर सिर रखो।"शोभा माँ ने वैसा ही किया। इस समय पहले की भाँति ही जप चल रहा था। उसके बाद श्रीकृष्ण ने गुरु की गोद में सिर रखने को कहा। कुछ क्षणों बाद गुरु की गोद से सिर उठाने पर शोभा माँ ने देखा चारों ओर नाना देव-देवी हैं और सबके मुँह पर हँसी है। इस दिन छोटा बालक "जादुवाछाधन"उन सबके सामने खूब नाचा था और इससे सभी खूब प्रसन्न हुए थे। शोभा माँ ने श्रीकृष्ण की आज्ञा से उनके हाथ से मक्खन लेकर जादुवाछाधन को खाने को दिया, इससे वह और नाचने लगा। ठाकुर जी ने कहा, "मैं छोटा था तब ऐसा ही था।"इसके बाद जब शोभा माँ ने ठाकुर जी के पैर पर सिर रखा तो सभी देवी-देवता उन्हें आशीर्वाद देकर चले गए। श्री राधारानी ने कोई बात नहीं कही।

इस दिन शोभा माँ ने अपने पिता के पूछने पर कहा, "आज नाम लेने को बैठते ही सिर पर अत्यन्त उज्ज्वल राधाकृष्ण की मूर्ति दिखाई पड़ी। दो-एक मिनट बाद वे स्वयं उतरकर आसन पर आ विराजे। पूजा के समय जिन सब देवी-देवताओं को देखा था, इस समय भी कभी-कभी शून्य में अपने सामने उन्हें देखा—काली, दुर्गा, विष्णु (हाथ में चक्र था) और भी अनेकों को। ठाकुर जी ने कहा था, 'यह सब मैं ही हूँ, मेरे ही विविध रूप हैं। इसी से भिन्न-भिन्न मूर्तियों की पूजा भी भिन्न-भिन्न होती है'।"

पौष की २९ वीं तिथि को संक्रान्ति के दिन जब शोभा माँ ने पीठा, दही इत्यादि ठाकुर जी को निवेदन किया तो उन्होंने कहा, "चिउड़ा क्यों नहीं दिया? (पूर्वी बङ्गाल के अनेक भागों में पौष-संक्रान्ति के दिन दोपहर में दही-चिउड़ा खाने का प्रचलन है।) तब शोभा माँ ने कहा, "आप तो धूप में तैयार चिउड़े खाएँगे, और हमारे पास राँधे धान के ही चिउड़े हैं।" ठाकुर जी राँधे धान के चिउड़े ही खाएँगे, सुनकर शोभा माँ ने आसन से उठकर चिउड़े ले जा कर ठाकुर जी को निवेदन किये। अपरान्ह में भुजिया चावल का भात निवेदन करने के लिए बैठने पर देखा गया कि शोभा माँ की आँखों से अटूट आँसू बरस रहे हैं। उसके कुछ देर बाद देखा गया कि बिना हाथ धोये ही आरती कर रही हैं। भावावस्था के भङ्ग होने पर उन्होंने बताया, बाबा जी महाराज ने भोग लगाने का जो मन्त्र मुझे सिखाया था, उस मन्त्र द्वारा अन्न निवेदन करते ही ठाकुर जी ने आकर कहा, "मुझे बुलाया है?" शोभा माँ ने कहा, "क्यों? मैंने तो नहीं बुलाया!"

ठाकुर जी—हाँ, बुलाया है, मैं भोजन करूँगा।

शोभा माँ—[कुछ देर सोचकर] यह सामान्य भोजन आप करेंगे?

ठाकुर जी—मैं जैसे अच्छा भोजन करता हूँ, वैसे ही बुरा भी करता हूँ।

यह कहकर ठाकुर जी भोजन करने लगे और साथ ही नाना देवी देवता भी भोजन करने लगे। रात को भी भात का भोग लगाते समय अपराह्न के समान घटित हुआ। और भी देखा गया कि शोभा माँ पैर पर ताल दे रही हैं। बाद में मालूम हुआ, ठाकुर जी भोजन के पश्चात् नाच रहे थे और शोभा माँ को ताल देने को कहा था।

माघ के प्रथम दिन शोभा माँ पूजा पर बैठकर मुँह से एक प्रकार की आवाज कर रही थीं। पूजनोपरान्त उन्होंने बताया कि इस दिन ठाकुर जी के साथ शोभा माँ गाय चराने गई थीं। दूसरे दिन ठाकुर जी शोभा माँ के साथ गोटी खेलने बैठे और हार गये। उसके बाद श्री श्री राधारानी ने उसी खेल में शोभा माँ को हरा दिया।

माघ के तीसरे दिन शोभा माँ पूजा करते-करते उठकर वंशीधारी कृष्ण की भङ्गी में खड़ी हो गईं। कुछ देर बाद कालीमाता की भङ्गी में खड़ी हुईं। बाद में विदित हुआ कि ठाकुर जी ने ही शोभा माँ को इस प्रकार खड़ी होने को कहा था।

❋❋❋
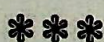
तीन

इसी समय या इसके कुछ पहले सुकुमार बाबू का पत्र पाकर उनके भतीजे शिशिर बाबू शोभा माँ की दशा देखने और उस पर विचार करने के लिए वृन्दावन से आए। वे सदा गुरु के निकट रहते थे। वे ही उनकी चिट्ठी-पत्री लिखते थे, शास्त्रादि का भी कुछ-कुछ अभ्यास किया था और इस विषय में परमज्ञानी गुरु के मुख से और भी अधिक सुना था। इसलिए शोभा माँ की अवस्था के विषय में स्वयं कुछ निश्चय करने का साहस न करके सुकुमार बाबू ने शिशिर बाबू को बुलाया। बाद में दो और व्यक्ति शोभा माँ की अवस्था के सम्बन्ध में सूचना पाकर कौतूहलवश उन्हें देखने आए। एक श्रीमान् बाबू देवहरि दे, बी.एस-सी, इनका घर जिला चौबीस परगने में था और ये किसी प्रसिद्ध घृत-व्यवसाय में रासायनिक परीक्षक के रूप में काम करते थे। ये भी श्री श्री सन्तदास बाबा जी के शिष्य थे। ये ही महामहोपाध्याय श्री गोपीनाथ कविराज को पहली बार कलकत्ते से बरकान्ता ले गए थे। और दूसरी थीं श्रीमती उषा देवी। इनकी चर्चा भी पहले एक बार कर चुका हूँ। ये भी सन्तदास बाबा जी की शिष्या थीं; संसार में सुख नहीं, इसलिए ये प्रायः गुरु जी महाराज के आश्रम में ही रहती थीं और गुरु-सेवा तथा ठाकुर-सेवा की निष्ठा द्वारा उनकी विशेष स्नेह-पात्री हो गई थीं। मैमनसिंह शहर के अपने मैके में ये अधिक रहती थीं।

फागुन का महीना। शोभा माँ पिता के भद्रासन कोण्डा ग्राम में आई थीं। देवहरि दे और उषा माँ भी वहीं थीं। २२ (फागुन) तारीख को देवहरि ने शोभा माँ से घर में प्रतिष्ठित मूर्ति की आरती करने को कहा। स्थापित मूर्ति के सामने इससे पहले शोभा माँ ने कभी आरती नहीं की थी और पद्धति से भी परिचित नहीं थीं। देवहरि के उक्त अनुरोध पर उन्होंने बाबा जी महाराज के चित्र के सामने प्रणाम करके कहा, "हाँ, मैं ही आरती करूँगी; बाबा जी आरती करने का तरीका समझा देंगे।"

आरती प्रारम्भ हुई, किन्तु कुछ क्षणों बाद ही देखा गया कि जहाँ मूर्ति है वहाँ आरती नहीं हो रही है। शोभा माँ की दृष्टि इधर-उधर घूम रही है; दोनों नेत्र विस्फारित हैं, मुख पर मन्द-मन्द हँसी है। बीच-बीच में सम्मतिसूचक भाव से सिर हिला रही हैं। सभी अवाक् होकर यह मनोरम दृश्य देखने लगे। आरती के बाद बाह्य दशा लौट आने पर पिता के पूछने पर शोभा माँ ने कहा, "आरती के समय

मैंने मूर्ति या आसन कुछ भी नहीं देखा, देखा कि ठाकुर जी खड़े हैं और अनेक देवी-देवता एकत्र हो गए हैं। बाबा जी महाराज ने जहाँ जिस भाव से आरती करने को कहा, उसी भाव से वहाँ-वहाँ मैंने आरती की।

दूसरे दिन सुकुमार बाबू ने गुरु जी के भोग का आयोजन किया। शोभा माँ भोग लगाने गईं। खिचड़ी, दही, मिठाइयों का आयोजन किया था। घर का द्वार बन्द करके भोग लगाया जाता है। शोभा माँ भीतर थीं; सुकुमार बाबू, उनके भाई सुरेन्द्र बाबू (श्रीयुत सुरेन्द्र चन्द्र राहा), शिशिर बाबू और पूर्वोक्त देवहरि दे बाहर राह देख रहे थे। सुकुमार बाबू सोच रहे थे, "बाबा ग्रहण करेंगे या नहीं, शोभा माँ ही जानेंगी, हम लोगों के जानने का उपाय नहीं।" इसी समय शोभा माँ भोग लगाकर बाहर आईं। उषा माँ भोग लेने को घर में घुसते ही चिल्लाकर कहने लगीं, "काका बाबू, शीघ्र घर में आकर देखिए यह सब क्या है!" देखा गया, खिचड़ी में भाजी मिलाकर न जाने कौन थोड़ा सा खा गया है, नमक के ऊपर एक उँगली की स्पष्ट छाप थी, अन्न के ऊपर दायें हाथ की एक साफ छाप थी, पाँचों उँगलियों के दाग स्पष्ट थे, कलाई की ओर एक पूर्ण-चिह्न (X) था। एक और निवेदित सामग्री पर चार छोटी-छोटी उँगलियों के अग्रभाग के निशान थे।

स्वभावतः अनेकों को सन्देह हुआ था कि निशान शोभा माँ के हाथ के ही होंगे। पूर्णचिह्न का तात्पर्य समझ में नहीं आ रहा था; और जो हाथ का दाग था, वह भी शोभा माँ के हाथ से बड़ा प्रतीत हो रहा था।

रात मे पूजा के बाद शोभा माँ ने आकर कहा, बाबा जी महाराज कह गए हैं "जिस जगह खाने के चिह्न थे वहाँ की वस्तु मैंने खाई है।" हाथ के निशान स्वयं ठाकुर जी के थे। छोटी अँगुलियों के चिह्न गोपाल के हाथ के थे; गोपाल ने भी खाया है।"

इसके पश्चात से प्रायः प्रतिदिन भोग लगने पर निवेदित द्रव्य में कोई-न-कोई स्पष्ट चिह्न दिखाई पड़ने लगे। कदाचित् ही इसमें व्यतिक्रम होता। कई दिनों के पश्चात् २९ तारीख फागुन में उजानचर नामक स्थान पर बाबा जी महाराज ने शोभा माँ से कहा, मैं तुम्हारा दिया भोग रोज ही ग्रहण करता हूँ, भोग में कोई चिह्न न दिखाई पड़े तो कोई ऐसा न सोचे कि मैंने (बाबा जी महाराज ने) उसे ग्रहण नहीं किया।

उजानचर का नाम ले चुका हूँ। (अंग्रेजी) सन् १९३६ के जनवरी मास में सुकुमार बाबू बरकान्ता की नौकरी छोड़ कर त्रिपुरा जिले के उजानचर नामक

स्थान के उच्च अंग्रेजी विद्यालय के प्रधानाध्यापक होकर चले गए। वे कोण्डा होते हुए इस स्थान पर गए। इसके पहले की दो और घटनाएँ उल्लेख्य हैं ।

शोभा माँ के बड़े भाई का नाम सेतू (श्रीमान् सुविमल राहा, बी.ए.) है। उस समय वे कालेज में आई.ए. में पढ़ते थे। इस समय के कुछ पहले उनकी 'नाम' लेने की प्रबल इच्छा थी। शोभा माँ ने जब यह बात गुरु जी को बताई तो उन्होंने कहा, "तुम्हें जिस कागज़ पर नाम लिखवा दिया है, उसी कागज़ को आसन पर रख, उसमें जो नाम है वही नाम एक कागज़ पर लिखकर सेतू को दे दो।" २४ तारीख फागुन का दिन इसके लिए निश्चित् किया गया। इस दिन रविवार था; यह शोभा माँ का मौन दिवस भी था। सेतू ने स्नान करके आने पर गुरु जी की आज्ञानुसार नाम पा लिया। इसके बाद ही अत्यन्त अप्रत्याशित रूप में शोभा माँ ने मौन भङ्ग करते हुए कहा, "सबुज कहाँ है? उसे बुलाओ; उसे भी नाम देने का आदेश हुआ है।" सबुज (सुनिर्मल राहा) शोभा माँ का अनुज है। उसके नाम-ग्रहण का कोई प्रस्ताव किसी ने इसके पहले नहीं सुना था। किन्तु देखा गया कि वह पहले ही स्नान करके आ गया है। उसने कहा, विगत रात्रि से 'नाम' लेने की मेरी भी इच्छा प्रबल हो उठी है, सो किसकी प्रेरणा से, पता नहीं। इसके पश्चात् उसने भी गुरुदेव के कथनानुसार 'नाम' प्राप्त कर लिया।

इसी दिन उषा माँ की बहिन कुमारी सुमति देवी पर भी कृपा करने का प्रस्ताव शोभा माँ के सामने रखा गया। सुमति तब मैट्रिक की छात्रा थी। शोभा माँ के निवेदन करने पर गुरुदेव ने कहा, "यदि वह दीक्षा लेना चाहती है तो अमुक तीन व्यक्तियों में से किसी एक से 'दीक्षा' ले सकती है। और यदि 'नाम' चाहती है, तो इस आसन से मैं ही दे सकता हूँ।" परामर्श के पश्चात् सुमति के नाम ग्रहण करने की बात ही स्थिर हुई। शोभा कागज़-कलम लेकर बाबा जी के आसन के सामने जब बैठीं तो उन्होंने एक नाम बोल दिया, शोभा माँ ने उसे कागज़ पर लिख लिया। यह नाम सेतू या सबुज को दिए गए नामों से भिन्न था।

❋❋❋

चार

स्थान—उजानचर। अं० सन् १९३६ की जनवरी के अन्त में सुकुमार बाबू इस स्थान पर स्कूल के हेडमास्टर होकर आए। इस स्कूल के संस्थापक तथा कुछ और लोग भी बाबा सन्तदास जी महाराज के शिष्य थे। इसीलिए वे लोग सुकुमार बाबू को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। स्कूल अव्यवस्थित था। सुकुमार बाबू ने उसे कुछ व्यवस्थित रूप दिया; किन्तु यहाँ की नौकरी में उनकी रुचि नहीं रही, इसीलिए यहाँ अधिक नहीं रहे। मई के मध्य वे पुनः बरकान्ता की हेडमास्टरी पर लौट गए। सुकुमार बाबू जब उजानचर गए, तब शोभा माँ साथ न जाकर बाद में गई थीं। वस्तुतः सुकुमार बाबू के वहाँ चार मास के अवस्थान-काल में शोभा माँ लगभग दो मास वहाँ रहीं। इसी बीच वे हविगंज और बनियाचङ्ग भी कुछ दिनों के लिए गई थीं। इन तीनों स्थानों पर भोग-निवेदन के अन्त में भोज्य पदार्थ को ग्रहण करने के नाना प्रकार के चिह्नों से अङ्कित देखा गया। चैत्र की सत्रहवीं तिथि को शोभा माँ ने बाबा जी से पूछा, "मेरे भोग लगाने पर आप जिस प्रकार भोग ग्रहण करते हैं, उसी प्रकार दूसरे के निवेदन करने पर भी ग्रहण करते हैं क्या?"

बाबा जी महाराज ने उत्तर दिया,"मैं सभी को दिखाई पड़ूँ, भोग भी ग्रहण करूँ, यदि पुकारने की भाँति लोग पुकार सकें।"

शोभा माँ—मैं तो आपको उस प्रकार पुकारती नहीं।

बाबा जी—तू तो मेरी पगली माँ है।

शोभा माँ—वे भी तो तुम्हारे बच्चे हैं।

बाबा जी—सन्तानें जब छोटी होती हैं तब माता-पिता उन्हें नाना प्रकार से सुशिक्षा देते हैं। मरने के पश्चात् भी वे आशा करते हैं कि सन्तानें उन्हीं की भाँति या उनसे भी अच्छी हों। शिष्य जब अज्ञ थे तब मैंने उन्हें ज्ञान दिया है। अब उन्हें उसी प्रकार तो चलना होगा।

इस प्रसङ्ग में यहाँ और भी अनेक बातें कहनी आवश्यक हैं। शोभा माँ जब कलकत्ते मेरे घर में थीं, तब उनके भोग लगाने पर, किसी दिन देखा गया कि अन्न-पात्र में अन्न (केवल अन्न, और वस्तुएँ नहीं) समाप्त हो गया है। किसी दिन दाल के बर्तन में, किसी दिन खीर के बर्तन में कुछ भी नहीं था। किसी दिन कितनी ही कचौड़ी के भीतर आलू की सब्जी छिपी रहती थी, किन्तु कचौड़ी किसी भी स्थान पर कटी-फटी देखी नहीं गई। किसी दिन अन्न के बर्तन में अन्न, दाल तथा अन्य

पदार्थ सने हुए रहते थे। मेरे भवन के जिस कक्ष में ठाकुर जी आदि के चित्र थे, उसमें कोई नाली नहीं थी। भोग के पश्चात् उस घर में या बाहर बरामदे में कभी जल की एक बूँद का चिह्न देखने को नहीं मिलता था, जिसके द्वारा अनुमान किया जाता कि किसी ने भोग सानकर हाथ धोया है। हम लोग अविश्वासी हैं, इसीलिए सर्वदा सतर्क भाव से पूर्ण रूप में इन सब बातों पर दृष्टि रखते थे।

सुकुमार बाबू की डायरी में भी इसी प्रकार अविश्वास या सन्देह द्वारा जाग्रत तरह-तरह के अनुसन्धानों का उल्लेख है। उनकी स्त्री ने भी कम छान-बीन नहीं की। उजानचर में ही एक दिन उनकी एक परीक्षा की बात सुकुमार बाबू की डायरी में लिखी है। वैशाख की तेरहवीं तिथि को शोभा माँ के दाएँ हाथ का अँगूठा कट गया था, और कुछ अधिक ही कटा था। उसके कारण वे कई दिनों तक अपने हाथ से भात नहीं खा सकती थीं। उनकी माँ सफेद कपड़े का बैण्डेज अँगुठे पर बाँध देती थीं, और इसके लिये जितने स्थान तक बैण्डेज बाँधना जरूरी था, उससे अधिक स्थान छेंककर बैण्डेज बाँधती थीं। शोभा माँ इसी बैण्डेज-बँधे हाथ से ही भोग लगाया करती थीं। भोग के बाद देखा जाता था कि भोग लगाए अन्न में दाल आदि सब-कुछ एक में सना हुआ है, अथवा उसमें ऐसे निशान हैं जिससे पता चलता था कि किसी ने हाथ से अच्छी तरह खाया है। शोभा माँ के भोग लगाकर बाहर आते ही उनकी माँ उनके हाथ के बैण्डेज को भली भाँति देखती थीं कि उसमें भोज्य पदार्थ लगा है या नहीं। यह परीक्षा की बात शोभा माँ एक दिन मेरी स्त्री से करती-करती हँसकर लोट-पोट हो गईं।

भोग-निवेदन पर ऐसा देखा गया है कि बाबा जी के तैलचित्र में उनके मुँह के पास कई दाग लगे हैं। मेरे घर पर भी यह कई बार देखा गया है। एक दिन मेरे ठाकुर-घर में भोग-निवेदन के बाद मेरे गुरुदेव की एक फोटो पर और श्री श्री दुर्गा जी की एक तस्वीर में शीशे के ऊपर मुँह के पास भोग का अंश लगा देखा गया है। दोनों चित्र इतनी ऊँचाई पर दीवार में टँगे थे कि शोभा माँ की तो बात ही क्या, उनसे भी लम्बे किसी व्यक्ति का हाथ चित्र के मुँह तक पहुँचना नितान्त असम्भव है। सुकुमार बाबू के घर ऐसी घटना भी हुई थी कि, एक घर में भोग-निवेदन करने पर एक दूसरे घर में टँगे ठाकुर जी के चित्र के मुँह पर भोगांश लगा देखा गया।

इसी प्रसङ्ग में एक और बात कही जा सकती है। मेरे घर पर एक दिन किसी ने इस प्रकार स्थूल रूप में भोग-ग्रहण के सम्बन्ध में शोभा माँ से प्रश्न किया था। डाक्टर महेन्द्रनाथ सरकार उस समय उपस्थित थे। प्रश्न उन्हीं ने किया था या

नहीं, ठीक नहीं कह सकता। माँ ने उत्तर दिया था, "गीता में भी तो है, भगवान् को पत्र, पुष्प, फल इत्यादि जो कुछ भी भक्ति पूर्वक देता है, उसे वे ग्रहण करते हैं।"

प्रश्न—क्या वे स्थूल वस्तु ग्रहण करते हैं? या वे भक्तिमात्र ही ग्रहण करते हैं।

शोभा माँ—गीता में यही है क्या? यदि वे भक्ति के अतिरिक्त और कुछ ग्रहण नहीं करते तो स्पष्ट रूप में वैसी बात कहने में कौन-सी बाधा थी? पत्र, पुष्प, फल आदि ग्रहण करते हैं, ऐसा क्यों कहेंगे?

शोभा माँ के उत्तर पर महेन्द्रनाथ सरकार ने "वाह-वाह!" कहकर आश्चर्य व्यक्त किया था, ऐसा याद आता है।

उजानचर आने पर पूजा करने के समय शोभा माँ में नाना देवी देवताओं-विशेषत: कृष्ण, विष्णु, काली और लड्डू गोपाल—की अङ्ग-भङ्गी बार-बार देखी जाने लगी। एक दिन उनके हाथ में ऐसी मुद्रा प्रकट हुई जिससे ऐसा लगता था कि शोभा माँ किसी की अभ्यर्थना कर रही हैं। चैतन्य होने पर उन्होंने कहा, कोई महा-पुरुष आए थे। एक दिन हाथ की भङ्गी की व्याख्या से पता चला कि गोपाल शोभा माँ के हाथ पर नाच रहे थे। एक दिन एक देवता आए थे। ठाकुर जी ने शोभा माँ के द्वारा सम्पूर्णतया एक नई पद्धति से उनकी पूजा कराई। उनके लिए एक स्वतन्त्र आसन भी देना पड़ा था। शोभा माँ को लगा था कि वे देवता त्रिनयन हैं। और एक दिन सम्भवत: ब्रह्मा आए थे। ठाकुर जी ने शोभा माँ के द्वारा उन्हें भी एक स्वतन्त्र आसन दिलाया और स्तव-पाठ कराकर प्रार्थना करवाई। पिता के पूछने पर शोभा माँ ने कहा, सभी देवता ठाकुर (श्रीकृष्ण) के भिन्न-भिन्न रूप हैं। किन्तु प्रत्येक की विभूति भिन्न और स्तव-पूजा भी भिन्न है। स्वयं ठाकुर जी यह स्तुति-पूजा आदि शोभा माँ को सिखा देते हैं। एक दिन दस बजे के समय बाबा जी महाराज को निवेदन करने के लिए थोड़ा-सा दूध लेकर घर में घुसते ही शोभा माँ और सुकुमार बाबू ने भी देखा कि आसन के ऊपर आस्तरण के बीच में थोड़ा-सा भाग ऊँचा होकर जैसे खिंच गया है। शोभा माँ ने आगे बढ़कर लक्ष्य करके कहा, एक शालग्राम उसके नीचे आए हैं। सुकुमार बाबू ने कुछ भी नहीं देखा। कुछ क्षणों बाद शालग्राम अन्तर्हित हो गए।

अङ्ग-भङ्गी के सम्बन्ध में शोभा माँ प्राय: कुछ कह नहीं पातीं। पूछने पर कहतीं, "ठाकुर जी मुझे कब कैसी बना देते हैं, कुछ कह नहीं सकती; क्योंकि मैं और ठाकुर जी भिन्न हैं यह ज्ञान तब मेरा नहीं रहता। थोड़ी देर बाद समझती हूँ कि मैं उनसे भिन्न हूँ। तब मैं ठाकुर जी को भी देखती हूँ और बाबा जी को भी।"

श्री श्री माँ– कृष्णभंगी

चैत की २६ वीं तिथि को शोभा माँ ने अपने पिता से कहा कि आपके यहाँ जो राधा रानी का चित्र है, उसकी अपेक्षा राधा रानी का चेहरा बहुत अधिक सुन्दर है।

सुकुमार बाबू—अच्छा, ठाकुर जी के हाथ में कोई आभूषण है?

शोभा माँ—हाँ, "हस्त–पद्म" है। उसकी मूठ के नीचे (पूर्ण चिह्न जैसा चिह्न दिखाकर) ऐसा एक क्लिप के समान (आभूषण) है।

इतने दिनों बाद सुकुमार बाबू ने समझा कि, भोग के अन्न के ऊपर स्पर्श क़रने वाले हाथ की कलाई के जिस स्थान पर छू जाने की सम्भावना है, क्यों वहाँ पूर्ण चिह्न-सा एक चिह्न दिखाई पड़ता है! इस प्रकार का चिह्न मेरे घर में शोभा माँ द्वारा निवेदित भोग के ऊपर भी देखा गया है।

इसके बाद ठाकुर जी के आसन के ऊपर स्पष्ट पद-चिह्न देखा जाने लगा।

(बंगला)१३३४ साल के वैशाख की पहली तारीख से एक दूसरी अवस्था का विकास हुआ। इस दिन देखा गया कि शोभा माँ ध्यानावस्था में अपना पैर पलोट रही हैं। अपने ही पैर पर अञ्जलि दे रही हैं। अपने ही पैर से लेकर चरणामृत-पान कर रही हैं। इस दिन अपने पैर के पास आरती की। बाह्य ज्ञान के लौटने पर उनसे पूछा गया, "आज की पूजा में कोई विशेषता थी क्या?"

शोभा माँ ने उत्तर दिया, "कुछ नहीं। और दिनों की भाँति ही ठाकुर जी के पैर पलोट दिए हैं, अञ्जलि दी है, आरती की है, और चरणामृत-पान किया है।"

किसी-किसी दिन उन्हें आसन पर वंशीधर श्रीकृष्ण की मुद्रा में, मुँह पर मन्द-मन्द मुस्कान, किन्तु बाह्य ज्ञान-शून्य बैठे हुये देखा गया। पूजा के बाद शोभा माँ विशेष कुछ बोल नहीं सकीं। इसी समय से ऐसी अवस्था होने पर शोभा माँ के माता-पिता फल, धूप-दीप से उनकी अर्चना करने लगे, यद्यपि उनके प्रश्न और खोजों का अन्त नहीं था।

एक दिन (१२ वें वैशाख को) शोभा माँ ने अपने पिता से कहा, बाबा जी महाराज इस समय उसे दीक्षा विधि की शिक्षा दे रहे हैं। किस मन्त्र को पढ़कर गले में माला बाँधी जाती है, दीक्षा का मन्त्र क्या है, प्राण-प्रतिष्ठा का क्या मन्त्र है, यह सब मैंने सीख लिया है, शोभा माँ ने बताया। इसके अतिरिक्त शोभा माँ ने यह भी बताया कि यद्यपि मेरे माता पिता ने जो मन्त्र पाया है उसे उन्होंने कभी मुझे बताया नहीं तथापि मैं उसे जानती हूँ, क्योंकि बाबा जी महाराज ने मुझे उसे बताया है। यह कहकर उन्होंने मन्त्र को प्रकट कर दिया। बाबा जी महाराज ने इस मन्त्र के बीज

का खूब जोर से उच्चारण किया था तथा "ब" फला और आ-कार युक्त एक शब्द का अन्त में हिन्दी-भाषी की भाँति "व"—युक्तवत् उच्चारण किया था, यह भी कहा। शोभा माँ इस शेषोक्त-रूप उच्चारण का कारण समझ नहीं सकीं, इसलिए पिता से इस बारे में पूछा था। यह शब्द सुकुमार बाबू की डायरी में लिखा गया है; किन्तु मन्त्र या मन्त्रांश सर्वसाधारण के आगे प्रकाश्य नहीं होता, इसीलिए यहाँ सङ्केत-मात्र द्वारा कह दिया गया।

शोभा माँ ने इसी दिन यह भी कहा, अब जो लोग बाबा जी महाराज से दीक्षा लेंगे वे स्वयं ही माला, गोपीचन्दन इत्यादि लेकर आएँगे, बाबा जी ने ऐसा ही आदेश किया है। इससे स्पष्ट है कि अब तक शोभा माँ ने जिन्हें नाम दिया और इसके बाद भी (अन्ततः उनमें स्वयं गुरु होने की योग्यता जब तक न हो जाय तब तक) जो लोग उनसे नाम या दीक्षा पाएँगे, वे मूलतः सन्तदास बाबा जी से ही पाएँगे या उन्होंने प्राप्त की है। शोभा माँ को केवल प्राप्ति का द्वार-स्वरूप ही समझा जायगा।

इसी दिन शोभा माँ से कहा गया कि उनके सहित बाबा जी महाराज जो लीला करते हैं, उसे वृन्दावन आश्रम के श्रीयुत धनञ्जय दास बाबा जी को लिखना उचित है या नहीं, इस विषय में बाबा जी महाराज से जिज्ञासा करें। तीसरे पहर ठाकुर जी की यथारीति निद्रा-भङ्ग कराके "शीतल" (भोग) देकर शोभा माँ ने आकर कहा कि बाबा जी महाराज ने आदेश दिया है, "इस समय यह सब धनञ्जयदास जी को बताने की आवश्यकता नहीं।"

वैशाख की बाईसवीं तिथि को शोभा माँ को वंशीधर श्रीकृष्ण की भङ्गी में आसन पर बैठे देखा गया। बाद में अकस्मात् वराभयहस्ता काली जी की मुद्रा में खड़ी हो गईं। तदनन्तर इस अवस्था में ही कृपाण द्वारा किसी पर प्रहार करने की मुद्रा में हाथ चलाते देखा गया।

पूजनोपरान्त बाह्य-ज्ञान लौटने पर उन्होंने पिता के पूछने पर बताया, आज तीन नए विषय सीखे हैं, उन्हें आप लोगों को नहीं बताऊँगी।

प्रश्न— किसने सिखाया है?

उत्तर— कह नहीं सकती। इस समय तो किसी को नहीं देख रही हूँ। लगता है कि एक असुर बाधा डालने आया था, काली माता ने तलवार से उसे मारा है।

प्रश्न— तू कहाँ थी?

उत्तर— कौन कहाँ था, मैं क्या जानती हूँ?

२४ वें वैशाख के प्रातःकाल पूजा समाप्त करके शोभा माँ ने कहा, "बाबा, देखो मेरा हाथ कैसा फूल उठा है!"

पिता— ऐसा क्यों हुआ?

शोभा माँ—आज गोपाल हाथ में एक छड़ी लेकर खूब भाँज रहा था, सहसा छड़ी ठाकुर जी की देह पर लग गई थी।

पिता— ठाकुर जी की देह पर लगी थी, उसे क्या तुमने देखा था?

शोभा माँ—नहीं, देखा नहीं। मैंने अपने को, ठाकुर जी को या बाबा जी महाराज को किसी को, देखा नहीं। किन्तु छड़ी जो ठाकुर जी की देह पर लगी और उससे ठाकुर जी का हाथ स्पष्ट फूल उठा, उसका प्रतिभास मुझे हुआ। अच्छा बाबा, इससे मेरा हाथ क्यों फूल उठा?

सुकुमार बाबू ने कोई उत्तर नहीं दिया; और वे उत्तर दे ही क्या पाते? वे केवल सोचने लगे "शोभा जब श्रीकृष्ण की मुद्रा में बैठती है, तब क्या वह उनके साथ एक देह हो जाती है?"

दो दिनों बाद शोभा माँ ने कहा—"पूजा करने बैठते समय देखा कि राधा-कृष्ण खड़े हैं और बाबा जी महाराज भी खड़े हैं। इसके बाद और कुछ नहीं देखा; केवल यह अनुभव किया कि मैं और श्रीकृष्ण दोनों जैसे एक हो गए हैं।" इस दिन भी पूजा के समय शोभा माँ में पहले श्रीकृष्ण की मुद्रा और बाद में श्री काली जी की मुद्रा देखी गई।

शोभा माँ की साधनावस्था में बारम्बार काली-दर्शन और उनकी देह में काली जी की मुद्रा के प्रकाशन का उल्लेख सुकुमार बाबु की डायरी में बार-बार हुआ है। शेषोक्त व्यापार जो काली जी के साथ एकत्व की अनुभूति का फल था, वह भी उपरिलिखित उक्ति से स्पष्ट ही समझा जा सकता है। वैष्णव साधना में यह एक असाधारण अनुभूति ही कही जायगी। इसका विशिष्ट कारण, आशा है, आगे चलकर यथास्थान स्पष्ट हो जायगा। यहाँ निश्चय ही यह कह देना आवश्यक है कि काली, दुर्गा इत्यादि देवताओं के प्रति गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय में साधारणतः जैसा विद्वेष भाव परिलक्षित होता है, बाबा जी महाराज के सम्प्रदाय में वह विरल है। शिष्य-मण्डली को लिखे गए उनके बहुत-से पत्र 'पत्रावली' नाम से दो खण्डों में प्रकाशित हुए हैं। उनमें एतत्-सम्बन्धी विषय में विशेष उदारता के प्रमाण हैं। जिज्ञासु पाठकों से मैं उन्हें पढ़ने का अनुरोध करता हूँ। समस्त सम्प्रदायों के सभी लोगों को इस पत्रावली से और भी बहुविध मूल्यवान् उपदेश प्राप्त होंगे। मैं समझता हूँ कि यहाँ

एक और बात कही जा सकती है। वह यही कि शोभा माँ को इस बीच गुरु जी ने जिस उच्च भूमि पर पहुँचा दिया है, वहाँ साम्प्रदायिकता को स्थान नहीं है। इसीलिए उनके साधना-काल में नाना देवी-देवता, यहाँ तक कि स्वयं 'ब्रह्म' और 'त्रिनयन' (शिव) ने उनके समक्ष प्रकट होकर पूजा ग्रहण की। कट्टर साम्प्रदायिकों में किसके सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है? वस्तुतः साम्प्रदायिक कट्टरता और हठधर्मिता आध्यात्मिक उन्नति के अनुकूल भी नहीं है और लक्षण तो नहीं ही है।

पाँच

ज्येष्ठ मास के दूसरे सप्ताह में शोभा माँ उजानचर से हबिगंज गईं। यहाँ उनके पिता के एक ताऊ जी (श्रीयुत शचीन्द्र राहा) हैं। कई दिनों बाद वे इस स्थान से बनियाचङ्ग गाँव में गए। इन दोनों स्थानों पर जब शोभा माँ भोग-निवेदन करती थीं तो भोज्य पदार्थ में ठाकुर जी या बाबा जी महाराज का अथवा दोनों के ग्रहण-चिह्न प्रतिदिन, यहाँ तक कि प्राय: प्रतिबेला देखे गए। सन्ध्या, आह्निक आदि के समय देवता का आवेश भी उनकी अङ्ग-भङ्गिमा द्वारा व्यक्त होता था। ग्रन्थ की कलेवर-वृद्धि के भय से इन सबका सविस्तार विवरण नहीं दिया गया।

ज्येष्ठ की १८ वीं तिथि को बनियाचङ्ग में सुकुमार बाबू ने अपने एक व्यक्तिगत कार्य के विषय में बाबा जी महाराज से कुछ प्रार्थना-निवेदन करने के लिए शोभा माँ से कहा था। शोभा माँ ने यह प्रार्थना गुरु जी के सामने उपस्थित की और फिर लौटकर पिता जी से कहा, "बाबा जी महाराज ने कहा है कि इतना घबराने से काम नहीं चलेगा; तनिक धैर्य धारण करना और निर्भर रहना सीखना होगा।"

इस परिच्छेद का निम्नलिखित अंश भी शिशिर बाबू की डायरी के आधार पर लिखा गया है।

बनियाचङ्ग से शोभा माँ के हबिगंज लौट आने पर आषाढ मास की १२ वीं तारीख को शिशिर बाबू ने उनसे कहा, "गीता के तृतीय अध्याय के ३३ वें और ३४ वें, दोनों श्लोकों के अर्थ के विषय में एक सन्देह हो गया है, बाबा जी से इसकी मीमांसा करने को कहना।" इसके उत्तर में शोभा माँ ने कहा, "बाबा जी प्रयोजन के अनुसार जो कहेंगे, उससे अधिक मैं उनसे पूछ नहीं सकूँगी।" किन्तु दूसरे ही दिन आह्निक के बाद शोभा माँ ने कहा, "गीता के श्लोक के विषय में बाबा जी ने उत्तर दिया है, 'उसके (शिशिर बाबू के) मन में ही अर्थ का उदय हो गया है'।" सचमुच ही शिशिर बाबू ने इसी बीच अपने मन-ही-मन सन्देह की एक मीमांसा कर ली थी।

हबिगंज से शोभा माँ कुमिल्ला आईं। यहाँ भी उनके एक ताऊ जी (श्री वरदाकान्त राहा) रहते थे। आषाढ़ की १९ वीं तारीख को रात में शोभा माँ ने कहा, "कल ताऊ जी की दीक्षा हो जाय तो अच्छा हो।" यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि वरदा बाबू ने स्वयं श्री सन्तदास बाबा जी से दीक्षा के लिए प्रार्थना की थी और

उन्होंने दीक्षा देना स्वीकार कर लिया था। किन्तु दुर्भाग्यवश बाबा जी के जीवन-काल में वरदा बाबू को दीक्षा-लाभ नहीं हो सका। दूसरे दिन आषाढ़ की २० वीं तारीख को प्रातःकाल आह्निक समाप्त करके शोभा माँ ने आकर कहा, "बाबा जी महाराज ने कहा है कि ताऊ जी और ताई जी की दीक्षा होगी।" इस पर शिशिर बाबू ने पूछा, "मन्त्र का क्या होगा?"

शोभा माँ—महाराज जी बता देंगे और मैं लिख लूँगी।

यह कहकर शोभा माँ कागज़ और कलम लेकर पूजा-घर में गईं और थोड़ी देर में बाहर आकर कहा, "मन्त्र लिखा जा चुका।"

शिशिर बाबू—बाबा जी महाराज ने मन्त्र कहा कैसे?

शोभा माँ—उन्होंने सामने खड़े होकर कहा और मैंने लिख लिया। ....मैंने बाबा जी से पूछा था कि मन्त्र तो गुरु कान में देते हैं और उसी से तो गुरु की शक्ति शिष्य में सञ्चरित होती है। इस पर बाबा जी महाराज ने कहा, इस लेख द्वारा देने पर भी वही शक्ति सञ्चरित होगी।

उसके बाद कण्ठी, जप-माला, वस्त्र सब लपेट कर शोभा माँ के हाथ में दिया गया। शोभा माँ ने सब लेकर घर में जाकर ऐसा भाव व्यक्त किया, जैसे कण्ठी इत्यादि का गुरु के चरणों से स्पर्श कराकर शोधन कर रही हों। बाद में प्रायः २५ मिनट तक उनके साथ बातचीत करने का भाव दिखाया। इस समय शोभा माँ के मुँह पर अपूर्व हँसी की कान्ति प्रस्फुटित हुई थी। इसके बाद उन्होंने वरदा बाबू और उनकी स्त्री को कागज़ से मन्त्र को पाँच बार पाठ करने को कहकर यथानियम दीक्षा दी थी।

***

छह

उजानचर का काम सुकुमार बाबू को अच्छा नहीं लगा; इसी से वे उसे छोड़कर बरकान्ता स्कूल में लौट आए। शोभा माँ भी कुमिल्ला से आषाढ़ की २७ वीं तारीख को वहीं आ गईं। यहाँ भी वंशीधर कृष्ण और काली जी की मुद्राओं से उनके आवेश व्यक्त होने लगे। भोग-निवेदन में भी पहले की भाँति नाना प्रकार के हाथ लगने के चिह्न प्रत्येक बार दिखाई पड़ने लगे।

आषाढ़ की ३१ वीं तारीख को (अंग्रेजी १५-६-१९३६) सबेरे शोभा माँ ने शिशिर बाबू से कहा, "कई दिनों से मुझे जाने कैसा लग रहा है। मैं कहाँ रहती हूँ, कह नहीं सकती। पेड़-पौधे, घर-द्वार, लोगों का आना-जाना सब कुछ मुझे स्वप्नवत् प्रतीत होता है।" दूसरे दिन रात में पूजा समाप्त करके उन्होंने शिशिर बाबू से कहा, "मैंने देखा कि सहसा यह वृक्ष दिव्य आलोक से उज्ज्वल हो उठा और उसमें श्रीकृष्ण को भी देखा है। और दूर का वह वृक्ष सामान्यतः दूरस्थ नहीं लगता था, बल्कि लगता था कि वह बिल्कुल पास है। श्रीकृष्ण ने कहा, यह जो पेड़ देख रही हो, यह भी मेरा ही अंश है। दूसरे ही क्षण और कुछ भी नहीं दिखाई पड़ा।"

श्रावण की ११ वीं तारीख को एक दूसरी भङ्गी का प्राकट्य हुआ। रात में एक भाव आया; इस भाव की आवेशावस्था में शोभा माँ उठ खड़ी हुईं और हाथों को कमर के पास टेढ़ा करके रखा। हबिगंज और उजानचर में भी यह भाव एक-एक दिन देखा गया था। उसके बाद वे जिस आसन पर खड़ी होकर इस प्रकार भावस्थ हो गई थीं, उस पर स्पष्ट चरण-चिह्न देखे गए थे। आज भी वह देखा गया—सफेद चादर पर गोपी चन्दन-चर्चित पद-चिह्न। सुकुमार बाबू ने शोभा माँ के पैर को नाप कर इससे मिलाकर देखा वह लम्बाई में एक इंच बड़ा था। दूसरे दिन भी सबेरे दो बार शोभा माँ के पैर की नाप के साथ पद-चिह्न की नाप मिलाने पर पहले दिन की भाँति ही परिमाण में उन्होंने अन्तर पाया। इसी दिन रात में शोभा माँ ने कहा— "बाबा जी महाराज ने कहा है-पैर की छाप में रक्त-चन्दन का लेप करके उसे चित्र की तरह बंधा कर रखा जाय।" शिशिर बाबू को याद आया कि बाबा जी के स्थूल शरीर में पदचिह्न देते समय रक्त चन्दन ही लगाते थे।

श्रावण की १५ वीं तारीख को हालियाकान्दी-निवासी हेमेन्द्रचन्द्र साह दीक्षित हुए। मन्त्र-प्राप्ति और दीक्षा का सारा काम वरदा बाबू की दीक्षा के समान ही हुआ। दूसरे दिन शोभा माँ कुमिल्ला आकर श्रीमान् बाबू प्रियनाथ चक्रवर्ती के आवास पर

ठहरीं और वहीं भोग-निवेदन हुआ। प्रियनाथ बाबू भोलानन्द गिरि महाराज के शिष्य थे। भोग-निवेदन के बाद देखा गया कि अन्न के ऊपर रक्त चन्दन-लिप्त हाथ की अँगुलियों के चिह्न हैं। शोभा माँ के हाथ में भोग-निवेदन के पहले या बाद में कभी रक्त चन्दन का दाग नहीं था। बहुतों ने अनुमान किया कि शोभा माँ स्वयं प्रसाद में हाथ नहीं लगातीं, इसी का प्रमाण इस रूप में ठाकुर जी दे गए हैं। शोभा माँ से कुछ पूछा नहीं गया; क्योंकि यह दिन था शोभा माँ का मौन दिवस। इस घटना का विवरण देकर सुकुमार बाबू डायरी में लिखते हैं—मैं कुछ धैर्यहीन प्रकृति का व्यक्ति हूँ। प्रसाद ग्रहण करके उठते ही आज ठाकुर जी ने क्या कहा है, यह जानने के लिए शोभा माँ के पास कागज़-कलम रख दी। शोभा माँ ने लिखा, "गिरि महाराज ने कहा, 'देख, प्रियनाथ मेरी सेवा-पूजा ठीक से नहीं करता। उससे कहना कि मेरा दिया हुआ जप वह किया करे।' बाबा जी महाराज ने कहा, 'आज गिरि ने थाली में भात खाया है, थाली में उसका चिह्न है।' बाबा जी ने और भी कहा, 'महापुरुष से 'नाम' लेकर अवहेलना करने पर कल्याण नहीं होता'।"

श्रावण की २५ वीं तारीख को जन्माष्टमी का व्रत था। स्थान—बरकान्ता। दोपहर को बातचीत के सिलसिले में शोभा माँ ने कहा, "आज मैं बदरिकाश्रम गई थी। ठाकुर जी और महाराज जी दोनों मेरा एक-एक हाथ पकड़कर मुझे ले गये थे। मन्दिर में कोई पत्थर की मूर्ति दिखाई नहीं पड़ी; साक्षात् चतुर्भुज नारायण को देखा था। वे कभी-कभी मेरे पास आते हैं। लौटते समय मैंने हरिद्वार के ब्रह्मकुण्ड में स्नान भी किया है।" शोभा माँ ने पिता के सामने बदरिकाश्रम का वर्णन भी किया था।

इस दिन राय बहादुर खगेन्द्रनाथ मिश्र के लिखे हुये 'प्रेम के ठाकुर' नामक निबन्ध का कुछ अंश पढ़कर सुकुमार बाबू शोभा माँ को सुना रहे थे। सुनते-सुनते शोभा माँ समाधिस्थ हो गईं और १५-२० मिनट तक उसी भाव में रहीं।

श्रावण की २८ वीं तारीख की रात में शोभा माँ ने कहा, "बाबा जी महाराज ने कहा है, 'अपने पिता से कहो कि एक चाँदी की छड़ी मुझे दें। मेरे स्थूल शरीर के सत्कार के समय मेरी लाठी नहीं दी गयी थी'।"

इसके उत्तर में शोभा माँ ने कहा—क्यों, आपके हाथ में तो यह छड़ी है।

बाबा जी—यह टूटी है।

शोभा माँ ने देखा लाठी टूटी थी। किन्तु कहा, "बाबा इस समय नहीं हो सकता, हाथ में रुपये नहीं हैं।"

बाबा जी—तेरी माँ के पास मेरे कुछ रुपए हैं। अपने पिता से कुछ और देने

को कहना, तो छड़ी हो जायगी।

छड़ी कितनी बड़ी होगी, यह भी बाबा जी ने शोभा माँ को दिखा दिया।

वस्तुतः शोभा की माँ के हाथ में बाबा जी के निमित्त कोई रुपया नहीं था; किन्तु ठाकुर जी के नाम से उठाकर रखे गए कुछ रुपए थे। सुकुमार बाबू ने डायरी में अपना उद्देश्य इस प्रकार व्यक्त किया था, "लगता है, बाबा जी ने सम्भवतः यह समझा दिया है कि वे और ठाकुर जी एक ही हैं।"

बाबा जी के आदेशानुसार चाँदी की छड़ी भाद्रपद की २१ वीं तारीख को उनके चित्र के पास रख दी गई। इस समय शोभा माँ समाधिस्थ हो गई थीं। बाह्य ज्ञान लौट आने पर उन्होंने कहा, "बाबा जी ने कहा, 'बहुत सुन्दर हुआ है'।"

उसके पहले भादों महीने में ही पहले की भाँति आवेशादि के साथ कई नये आवेश देखे गये। एक तो पहले समझ में नहीं आया, बाद में पता चला कि वह गायत्री देवी का आवेश था। एक आवेश वीणापाणि माँ का था। तीसरा आवेश लड्डू गोपाल (बाल गोपाल) का था। १० वाँ माँ काली का आवेश था, किन्तु वराभयहस्ता का नहीं था। लगता था, माँ काली किसी पर आक्रोश कर रही हैं। इस दिन रात में पिता के पूछने पर शोभा माँ ने कहा, "ठाकुर जी के आसन के सामने बैठकर दो-एक बार नाम लेते ही आँखों के समक्ष राधा-कृष्णादि अनेक देवी-देवता आ गये। दादा गुरु जी भी थे। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा और माँ काली भी थीं। एक 'ओम्' थे, वे जैसे जीवन्त और बड़े ही उज्ज्वल थे। इसके पश्चात् जैसे सभी देवताओं के साथ एक हो गई। तब कुछ दिखाई नहीं पड़ता था, आनन्द का बोध मात्र था। उस आनन्द का भोग कौन कर रहा था, यह भी नहीं बता सकती।"

सुकुमार बाबू—दूसरे समय कैसा अनुभव हुआ?

शोभा माँ—किसी दिशा में मनोयोग देते ही ऐसा प्रतीत होता है कि सभी श्रीकृष्ण हैं, अथवा सभी सजीव 'ओम्' हैं। कभी-कभी देखती हूँ कि श्रीकृष्ण हाथ में बाँसुरी लिए कमल के ऊपर खड़े हैं। तब बड़ा ही अच्छा लगता है—काफी देर तक देख सकती हूँ। एक हो जाने पर वैसा आनन्द नहीं होता। तब कहाँ रहती हूँ, कह नहीं सकती। एक दिन शून्य में खड़े होकर श्रीकृष्ण ने कहा, "जगत् सत्य है, तभी मेरे इस रूप में है।" यह कहकर उन्होंने अपनी छाती पर हाथ रखकर दिखा दिया। यह 'रूप' क्या है, मैं उसे समझती हूँ, किन्तु आप लोगों को समझा नहीं सकती। और भी अनेक बातें अनेक समय हुईं, वे सब सांसारिक बातें नहीं हैं। सब बातें मेरे भीतर हैं, किन्तु मुँह से बाहर नहीं होतीं, आतीं ही नहीं।

एक दिन कई आदमियों को प्रसाद बाँटते-बाँटते शोभा माँ में हनुमान् को भोजन देती हुई सीता का आवेश आया। एक दूसरे दिन (२६ तारीख भादों) सुकुमार बाबू के घर में शय्या पर सोकर कार्पेट की एक बृहत् काली मूर्ति की ओर देखकर शोभा माँ ने कहा, "काली माता की आँखों से जैसे अग्नि बाहर निकल रही है। काली माता को जब दूसरे भाव में देखती हूँ, तो मुझे अच्छा लगता है; किन्तु जब आँख से जैसे अग्नि निकलती है तब एक प्रकार का भय लगता है। यह देखो, माँ ने कहा, 'इस चित्र के भीतर मैं जीवन्त अवस्था में हूँ'।" यह कहते-कहते शोभा माँ समाधिस्थ हो गईं। बाह्य ज्ञान लौटने पर जब पूछा गया तो उन्होंने कहा, "माँ ने कहा, 'तेरे पिता की सेवा से मैं तुष्ट हूँ, इसी से कन्या रूप में इस भाव में आई हूँ। मैं और तुम एक हैं'।"

इसके पहले उजानचर में शोभा माँ ने एक दिन कहा, "काली माता ने कहा है, 'तेरे पिता मेरे पैरों में और रक्तचन्दन क्यों नहीं लगाते'?"

पहले कहा जा चुका है कि सुकुमार बाबू बचपन से ही चित्राङ्कित काली जी के पैर धोकर चरणामृत पीते और दीक्षा के पहले तक उनमें रक्तचन्दन लगाते थे। अब से फिर वे उस चित्र के पैरों में रक्तचन्दन लगाने लगे।

आश्विन की २ तारीख को देखा गया कि शोभा माँ ठाकुर जी को चन्दन और तुलसी देने गईं और भाव-विभोर होकर उन्हें अपने ही पैरों में दे दिया।

अब तक शोभा माँ जब भी भोग-निवेदन करती थीं केवल तभी उसमें ठाकुर जी और बाबा जी महाराज के द्वारा उसे ग्रहण करने का कोई-न-कोई चिह्न मिलता था। आश्विन की ३ तारीख को सुकुमार बाबू ने भोग-निवेदन किया। इस दिन लाई, दही और दो बताशे मिलाकर भोग-निवेदन किया गया। भोग-निवेदन के बाद देखा गया, लाई के बीच में कई स्थानों पर फाँक हैं। जैसे किसी ने इन स्थानों से लाई ले लिया अथवा हटा दिया है। दही की मलाई नहीं है।

इसके पहले एक दिन (वैशाख की ५ वीं तारीख को) शोभा माँ ने बताया, "बाबा जी महाराज ने कहा है कि भोग–निवेदन के समय किसी का उस घर के भीतर रहना उचित नहीं है।" इस पर शोभा माँ ने उत्तर दिया, "मैं भी तो रहती हूँ।"

बाबा जी—तुम्हें तो उस समय बाह्य ज्ञान रहता नहीं। अन्न को भोग लगाने और उसे ग्रहण करने में जितना समय लग सकता है, उतनी देर; और जल पीने को देने और उसके पीने में जितना समय लग सकता है, उतनी देर तक किसी का उस घर में रहना उचित नहीं।

उक्त आदेश के अनुसार, शोभा माँ को छोड़कर यदि कोई दूसरा भोग लगाने जाता तो वह भोग लगाकर बाहर आकर प्रतीक्षा करता और आज तक ऐसा ही करते हैं। १४ वें आश्विन को भी सुकुमार बाबू के भोग लगाने पर उसमें ग्रहण-चिह्न था। सविस्तार विवरण अनावश्यक है। इसके पश्चात् शोभा माँ की माता जी के भोग-निवेदन करने पर भी बीच-बीच में ग्रहण का चिह्न देखा गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों के मन में पहले भोग-ग्रहण के सम्बन्ध में जो संशय (अनेक विपरीत प्रमाणों के होते हुए भी) था और जो बारम्बार जाँच और खोज के फल-स्वरूप अब अच्छी तरह मन्द हो गया था, उसे जड़ से दूर करने के लिए ही उनके पूज्य गुरुदेव ने उनके द्वारा निवेदित भोग में ही ग्रहण करने का स्पष्ट चिह्न रख दिया था। हो सकता है, अन्य कारण भी रहा हो। उसकी आलोचना अनावश्यक है। मेरे घर पर भी एक दिन शोभा माँ के आदेश से मकान से सबकी अनुपस्थिति के समय मेरी स्त्री द्वारा निवेदित 'वैकाली' (सन्ध्याकालीन भोग) में भी ठाकुर जी या बाबा जी के परम अनुग्रह का सुस्पष्ट निदर्शन देखा गया था। विवरण की आवश्यकता नहीं।
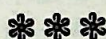
सात

यह परिच्छेद शिशिर बाबू की डायरी से सुकुमार बाबू की डायरी में उद्धृत अंश के सहारे लिखा जा रहा है। शोभा माँ कोण्डा जाने के रास्ते ब्राह्मणबाड़ीया में आई थीं। आश्विन की १४ ता: को वहाँ उनके अन्न-निवेदन पर उसमें नीले रंग की छाप देखी गई थी। दूसरे दिन शिशिर बाबू के पूछने पर शोभा माँ ने कहा, "श्रीकृष्ण के हाथ के नील कमल का काला दाग अन्न के ऊपर पड़ा था।"

तारीख १६ आश्विन। स्थान कोण्डा। शोभा माँ बाबा जी महाराज के पट की ओर देख कर समाधिस्थ हो गईं। बाहरी चेतना लौटने पर शिशिर बाबू ने कहा, "ठाकुर जी और बाबा जी को फूल नहीं दिये?" शोभा माँ फिर तुरन्त आसन पर बैठ गईं और एक कमल का फूल हाथ में लेकर समाधिलीन हो गईं। कुछ क्षणों के बाद धीरे-धीरे फूल को अपने ही पैर पर चढ़ा दिया। बाद में एक दूसरा फूल लेकर भी वैसा ही किया। फूल चढ़ाकर उठ आने के बाद शिशिर बाबू ने पूछा, "फूल किसे दिये?"

शोभा माँ—एक बाबा जी को और दूसरा ठाकुर जी को।

सन्तदास बाबा जी-कृत श्री श्री रामदास काठिया बाबा की जीवनी में साधकों के क्रमश: सात भूमि-लाभ का उल्लेख है। उनमें पहले की पाँच भूमियों की अवस्था का कछ-कुछ विषय दिया गया है। छठी और सातवीं भूमियों की अवस्थाओं का विवरण नहीं है। शिशिर बाबू ने वृन्दावन में एक दिन बाबा जी महाराज से पूछा— "इस स्थूल शरीर में रहते हुए साधक जहाँ तक पहुँच सकता है आप उस स्थान तक पहुँचे हैं या नहीं? वह मैं आप के मुख से ही सुनना चाहता हूँ!" इस पर उन्होंने उत्तर दिया, "बाबा, कहने से ही क्या विश्वास होगा? तो भी सद्गुरु पाया है, इसमें कोई संदेह नहीं।"

ये बातें आश्विन की १७ तारीख को शिशिर बाबू के मन में आईं। इसी दिन सन्ध्या को आरती के बाद शोभा माँ की देह में बाबा जी महाराज के खड़े होने की मुद्रा देखी गई। उसके बाद पूजा समाप्त करके आने पर शोभा माँ ने शिशिर बाबू से कहा, "ठाकुर जी ने बाबा जी को दिखाकर कहा उसने सप्तम भूमि पर उठ कर देह त्यागी है।"

शोभा माँ इतने दिनों में किस भूमि पर जा पहुँची हैं, यह जानने के लिए कौतूहल होने पर आश्विन की १६ तारीख के दिन शिशिर बाबू ने शोभा माँ से कहा, "शोभा, मैं जिसकी अवस्था जानना चाहता हूँ उसका नाम तुम्हें नहीं बताऊँगा, वह

इस समय किस भूमि पर है और अमुक की (किसी एक प्रसिद्ध साधक की) तुलना में उसकी अवस्था कैसी है?" इसके बाद किसी एक आदमी के मुँह से भजन सुनते-सुनते शोभा माँ समाधिस्थ हो गईं और कुछ देर तक उसी अवस्था में रहीं। उसके बाद उन्होंने शिशिर बाबू को बुलाकर कहा, "बाबा ने कहा है कि वह चतुर्थ भूमि प्राप्त पर चुका है और अमुक व्यक्ति की अपेक्षा अवस्था बहुत उच्च है।"

यह बात सुनकर शिशिर बाबू अत्यन्त विस्मित हुए; क्योंकि सन्तदास बाबा जी प्रदत्त भूमियों के विवरण में कहा गया है कि चतुर्थ भूमि-प्राप्त व्यक्ति विरले ही हैं। किसके विषय में उपर्युक्त प्रश्न किया गया था, इसे जानने के लिए शोभा माँ ने बड़ी जिद की, किन्तु शिशिर बाबू ने यह उन्हें नहीं बताया। इसके बाद पूर्वोक्त गायक एक और भजन गा रहा था और साथ-ही-साथ शोभा माँ की समाधि लग गई। इसी समय शिशिर बाबू के मन में यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि शोभा कब चतुर्थ भूमि पार करके पञ्चम भूमि में पहुँचेंगी। कुछ देर बाद शोभा माँ ने समाधि-अवस्था के बीतने पर शिशिर बाबू से कहा, "बाबा ने कहा है, पूस मास के प्रथम चरण में वह साधक पाँचवीं भूमि पर पैर रखेगा।"

इसी दिन रात को भोजन के उपरान्त शिशिर बाबू के साथ शोभा माँ की निम्नोक्त ढंग से बात हुई—

शिशिर—तू क्या सर्वत्र ही ठाकुर जी को देख पाती है?

शोभा माँ—हाँ, यहाँ तक कि बालू के कण में भी ठाकुर जी को देख लेती हूँ।

शिशिर—तू अपने विषय में क्या देख पाती है ?

शोभा माँ—मैं सबके बीच ही अपने को देखती हूँ।

शिशिर—तू क्या अपने को खूब बड़ा—सर्वव्यापी अनुभव करती है?

शोभा माँ—हाँ भैया, किसी-किसी समय लगता है कि मैं समस्त संसार में व्याप्त हूँ। रविवार को बातचीत बन्द रहती है, उसी दिन यह अवस्था अधिक रहती है। अच्छा, भैया, ऐसा क्यों होता है?

शिशिर—ऐसा ही होता है।

चतुर्थ भूमि में साधक की जैसी-जैसी अवस्था होने की धारणा शिशिर बाबू के मन में थी, सचमुच ही शोभा माँ में उसी-उसी प्रकार की अवस्था विकसित हुई है या नहीं, इसी की परीक्षा शिशिर बाबू पूर्वोक्त ढंग से प्रश्नों के द्वारा कर रहे थे। परिणाम में देखा गया था कि शिशिर बाबू की अनेक धारणाएँ सत्य निकलीं और दो-एक सत्य नहीं भी निकलीं। शेषोक्त के विषय में कौशलपूर्वक प्रश्न करके मालूम किया गया कि, पञ्चम भूमि के पूर्व ये अवस्थाएँ ठीक नहीं खुलती हैं। इन सब का

विवरण इस पुस्तक में देना अनावश्यक है।

आश्विन मास की २० वीं तिथि को शिशिर बाबू ने पूछा, "जिस साधक को कल तुमने चतुर्थ भूमि पर बताया था, उसकी जो समाधि होती है वह सम्प्रज्ञात है अथवा असम्प्रज्ञात?" थोड़ी देर के लिए ध्यानस्थ होकर ध्यान भङ्ग होने पर शोभा माँ ने बताया, "बाबा ने कहा है कि वह इस समय निर्विकल्प समाधि की अवस्था में है। अच्छा, भैया, निर्विकल्प समाधि नाम की कुछ अवस्था है क्या?"

इसके पश्चात् इसी दिन से कई दिनों तक शिशिर बाबू ने शोभा माँ से बहुत-से साधकों और विशिष्ट शक्तिशाली पुरुषों के विषय में यह पूछा कि उनमें कौन किस भूमि पर है। सभी प्रश्नों के उत्तर पूर्णतया प्रकाशन योग्य नहीं हैं। निम्नलिखित उत्तर अनेकों के चित्ताकर्षक होंगे यही सोचकर यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी प्रश्नों के उत्तर शोभा माँ ने प्रश्न सुनने के बाद थोड़ी देर के लिए ध्यानस्थ होकर ध्यान भङ्ग होने पर क्रमशः दिए थे। उत्तर यहाँ जिस रूप में सजाये गए हैं वे उसी क्रम से मिले थे, ऐसी बात नहीं है। बहुत-से स्थलों पर किसी व्यक्ति या विषय के सम्बन्ध में सभी प्रश्न एक ही दिन नहीं किये गये थे; किन्तु यहाँ एक व्यक्ति के सम्बन्ध में अनेक प्रश्नों के उत्तर एक ही स्थान पर दिए जा रहे हैं।

शङ्कराचार्य ने पञ्चम भूमि पर पैर रखने के पहले ही अपने भाष्यों की रचना कर डाली थी। उस समय उन्हें 'जगत् सत्य और जीव नित्य है' इसकी अनुभूति नहीं हुई थी। परवर्ती काल में जब उन्हें इसकी अनुभूति हुई, तब साथ-ही-साथ उन्होंने यह भी अनुभव किया कि भला-बुरा जब जो होता है वह सब भगवान् की इच्छा ही है और प्रयोजनवश ही होता है। इसीलिए उन्होंने भाष्य-संशोधन की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया।

रामानुज स्वामी ने चतुर्थ भूमि पर पहुँचते ही अपने सभी भाष्यों की रचना की थी। निम्बार्क स्वामी ने पञ्चम भूमि पर पहुँचकर भाष्य-रचना की। इनके भाष्य में ही पूर्ण सत्य प्रकाशित हुआ है।

सन्तदास बाबा जी ने तृतीय भूमि के अन्तिम भाग में अपनी पुस्तकें लिखीं। चतुर्थ भूमि पर पहुँचकर वे वृन्दावन गये और पञ्चम भूमि पर पहुँचकर उन्होंने दीक्षा देना आरम्भ किया। शिवपुर आश्रम में मूर्ति की प्रतिष्ठा के समय वे सप्तम भूमि पर पहुँचे थे। सन्तदास बाबा जी के सम्बन्ध में सभी प्रश्नों के उत्तर ठाकुर जी ने दिए। बाबा जी द्वारा रचित 'सांख्य तत्त्व-व्याख्या' ठीक है या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर मिला—उनकी सभी बातें ठीक हैं; भेदाभेद-सिद्धान्त की व्याख्या भी ठीक है।

संसार इस सिद्धान्त को शीघ्र ग्रहण करेगा या नहीं, इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं मिला।

सन्तदास बाबा जी ने ट्रेन में देह-त्याग क्यों की, इस प्रश्न के उत्तर में सन्तदास बाबा जी ने स्वयं कहा, "पगली माँ, यह सब जानकर क्या होगा? सब मेरे गुरु जी की इच्छा थी।" फिर काठिया बाबा जी ने कहा, "उसके देह-त्याग के पहले मैंने देखा कि यहाँ (अपने स्थान को दिखाया) उसका बहुत काम है इसीसे उसे यहाँ ले आया। वह यदि वृन्दावन पहुँचता, तब फिर सहज ही उसे नहीं ला पाता।" सन्तदास बाबा जी यह बात जानते थे या नहीं और जानकर कलकत्ते में देह-त्याग क्यों नहीं की? शिशिर बाबू के इस प्रश्न का उत्तर ऐसा मिला, "वे सब जानकर भी नहीं जानते; वे सब कुछ अपने गुरु जी का खेल मानते हैं। ...."

शोभा माँ के सम्बन्ध में एक प्रश्न का उत्तर इस प्रकार मिला, "तुम लोग जिस साधक की बात मन में लेकर प्रश्न करते हो मैं स्वयं उसे उसकी अपनी अवस्था का ज्ञान नहीं होने देता। पञ्चम भूमि पर पहुँचने पर भी उसे उसकी अवस्था समझने नहीं दूँगा। साधारणतः साधक लोग चतुर्थ भूमि पर पहुँचते ही अपनी अवस्था समझ सकते हैं। वह (शोभा) गुरु कृपा से ही उठ रही है।"

दूसरे दिन किसी अन्य प्रश्न का उत्तर मिला—शोभा माँ पञ्चम भूमि के बीचो-बीच ही पूर्ण ब्रह्मज्ञा होंगी।

प्रश्न—छठी और सातवीं भूमि पर कब पहुँचेंगी?

उत्तर—पूर्ण ब्रह्मज्ञ को और किसी भूमि की आवश्यकता नहीं होती।

शोभा माँ कितने दिनों में पूर्ण ब्रह्मज्ञा होंगी, इसके उत्तर में कहा गया, इसी वर्ष पहले पूस से २ महीने १३ दिनों के भीतर।

चतुर्थ भूमि पर पैर रखते-रखते ही निर्विकल्प समाधि होती है। पञ्चम भूमि पर सर्वत्र यातायात किया जा सकता है। हठयोगियों को पञ्चम भूमि-प्राप्ति के पहले ही दूर दृष्टि, दूर श्रवण, आकाश-गमन आदि विभूतियाँ प्राप्त हो सकती हैं। अमुक-अमुक (दो हठयोगियों) को यही हुआ था।

द्वितीय भूमि की अन्तिम और तृतीय भूमि की प्रथम अवस्था में निर्विकल्प समाधि के समान एक समाधि होती है, किन्तु निर्विल्कप समाधि में जो आनन्दानुभूति होती है, वह उसमें नहीं होती। (यद्यपि अनुभवकर्ता कौन है यह समझ में नहीं आता) अनेक साधक इसको निर्विकल्प समाधि समझकर निश्चिन्त हो गए हैं। ईश्वर कोटि हुए बिना (निर्विकल्प) समाधि के बाद कोई शरीर में नहीं लौटता, यह बात सच नहीं है।

तीसरी भूमि से ही साधक कभी-कभी समझते हैं कि, हम अवतार अथवा साक्षात् कोई देवता इत्यादि हैं। यह निश्चय ही किसी उच्च अवस्था की बात नहीं है। वामदेव ऋषि ने पञ्चम भूमि की मध्यावस्था में कहा था, "अहं मनुरभवं सूर्यश्च।" श्रुति में जो है, "स यदि पितृलोककामो भवति, सङ्कल्पादेव अस्य पितरः समुपतिष्ठन्ति" यह अवस्था सप्तम भूमि के बीचो-बीच हो सकती है।

पञ्चम भूमि पर आरोहण मात्र से ही पुरुष को पूर्ण ब्रह्मज्ञ नहीं कहा जाता। पञ्चम भूमि के मध्य में ही पूर्ण ब्रह्मज्ञता आ सकती है।

श्री काली जी के उपासक सप्तम भूमि पर पूर्ण ब्रह्मज्ञ होते हैं। रामप्रसाद और सर्वानन्द इस शरीर में ही पूर्ण ब्रह्मज्ञ हो गए थे। गायत्री के उपासक सप्तम भूमि पर नहीं पहुँच पाते और पूर्ण ब्रह्मज्ञ नहीं हो सकते। उनकी उच्चतम गति देवी लोक है।

कर्म के फल की आकांक्षा और कर्तृत्व-बुद्धि तृतीय भूमि-प्राप्त साधक को ही नहीं रह जाती।

गीता का प्रतिपाद्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर मिला—कर्मयोग। और भागवत के प्रतिपाद्य के सम्बन्ध में उत्तर मिला—मोक्ष (भक्ति नहीं)। भागवत का रचयिता कौन है? इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला था।

प्रश्न—किसी साधक में (शिशिर बाबू का अभिप्राय था—शोभा माँ में) जो काली, कृष्ण, गोपाल आदि मूर्तियों की अभिव्यक्ति होती है, उसका कारण क्या है?

उत्तर—निर्विकल्प समाधि की अवस्था में जब किसी साधक के ऊपर किसी देवता के पूर्णभाव का आवेश होता है, तब साधक उस भाव को सँभाल न पाकर तद्रूप हो जाता है।*

निर्विकल्प समाधि के उपरान्त अनुभूति रहती है। तब जगत् सत्य और जीव नित्य है, इसकी अनुभूति होती है।

---

* सुकुमार बाबू की डायरी में देखा गया है कि इसके बाद पूस की दूसरी तिथि को कुमिल्ला के प्रिय बाबू (पूर्वोक्त श्री प्रियनाथ चक्रवर्ती) ने किसी एक पुस्तक से थोड़ा-सा अंश पढ़कर शोभा माँ को सुनाया। इस अंश में, भक्त की देह में देवता के आवेश के विषय की आलोचना की गई थी। शोभा माँ ने सब बातों का समर्थन करके उसके अतिरिक्त कुछ और कहा। वह इस प्रकार है—

भक्त के शरीर में देवता का आवेश होने पर यदि उस भक्त में उन्हें धारण करने की क्षमता न हो तभी उनके रूप बाहर प्रकाशित होते हैं। प्रत्युत साधक में शक्ति-धारण की क्षमता होने पर भी भक्तों की मनोवाञ्छा पूर्ण करने अथवा उन्हें किसी प्रकार कृतार्थ करने के लिए भी देवत्व रूप का बाह्य प्रकाश कर सकते हैं।

आठ

स्थान कोण्डा। कार्त्तिक मास का (बंगला सन् १३४३) शेष भाग। सुकुमार बाबू माँ शोभा आदि के साथ अपने गाँव में आये। उषा माँ भी साथ थीं। कार्त्तिक की २१ वीं तारीख को उषा माँ की इच्छा हुई कि शोभा माँ के आधार से मैं अपने गुरुदेव बाबा सन्तदास जी की पूजा करूँगी। शोभा माँ के प्रातःकालीन आह्निक के समाप्त हो जाने पर उषा माँ पूजा की सब सामग्री लेकर आईं। उसे देखकर शोभा माँ ने कहा, "मैं ठाकुर जी की पूजा करूँगी।"

पूजार्थ बैठकर शोभा माँ अन्य दिनों की भाँति आसन के ऊपर सिर रखकर समाधिस्थ हो गईं। कुछ क्षणों बाद वे उसी आसन पर वंशीधर की मुद्रा में बैठीं। उषा ने पूजा आरम्भ की। उस समय घर के सब लोग वहाँ एकत्र हो गये थे। सब ने वंशीधर-रूप शोभा माँ के चरणों में पुष्पाञ्जलि दी। उसके बाद शोभा माँ काली जी की मुद्रा में खडी हुईं और क्रमशः छड़ीधारी सन्तदास बाबा जी महाराज की मुद्रा उन्होंने धारण की। तब सब लोग प्रणत्त होकर पुष्पाञ्जलिदान और आरती करने लगे और अन्त में भोग का द्रव्य सामने रखकर बाहर आ गये। यथासमय द्वार खोलने पर देखा गया कि शोभा माँ गोपाल के आवेश में एक मुट्ठी हलवा लेकर आधी मुट्ठी मुँह में डाल चुकी हैं। क्षण भर बाद हाथ और घुटने के बल पर बाल गोपाल की तरह चलते हुये वे अपने स्थान पर आ गईं; तदनन्तर उनका आवेश जाता रहा।

इस समय से कई दिनों तक पूर्वोक्त रूप भावावेश और शोभा माँ के आधार से स्वजनों द्वारा गुरु और नाना देव-देवियों की पूजा, अञ्जलि-दान इत्यादि चलते रहे। किसी-किसी दिन गुरु के आवेश में शोभा माँ को माता, पिता और अन्य लोगों के भी सिर की ओर धीरे-धीरे हाथ फैलाकर आशीर्वाद की मुद्रा में देखा गया है।

कोण्डा से शोभा माँ कुमिल्ला आईं। कार्त्तिक की २६ वीं तारीख को प्रियनाथ बाबू के निवास-स्थान पर काली जी के भाव में आविष्ट शोभा माँ की पूजा के बाद भोग देने के समय सुकुमार बाबू के द्वारा उन्हें निवेदन करने पर शोभा माँ ने आवेश की अवस्था में मृदु हास्ययुक्त मुख से कहा, "जल तो नहीं दिया!" सचमुच ही देखा गया कि जल नहीं दिया गया है। इस प्रकार समाधि-अवस्था में शोभा माँ को मुँह से कुछ भी कहते सुना नहीं गया था। सुकुमार बाबू लिखते हैं—"कितना-स्नेहमय था वह स्वर!"

कार्त्तिक की २९ वीं तारीख को अन्नकूट उत्सव के लिए पहली रात में १२

बजे से रसोई बनाने की व्यवस्था हुई। शोभा माँ ने कहा था, रात के १२ बजे से रसोई बनाने से दूसरे दिन का भोग बासी होने का दोष नहीं होता। पचास या साठ प्रकार के व्यञ्जन तैयार किये गये। अधिकांश रसोई शोभा माँ ही ने बनाई। इसके पहले रसोई बनाने या परोसने का अभ्यास शोभा माँ को अधिक नहीं था। दूसरे दिन यथासमय भोग-निवेदन हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि भोग में तरह-तरह के ग्रहण-चिह्न थे। अन्नकूट का उत्सव देखने के लिए बहुत-से लोग एकत्र हुए थे—अनिमन्त्रित बहुत-से लोग प्रसाद पाने के लिए बैठ गए। शोभा माँ ने कहा, "परोसूँगी मैं ही। सब लोग भर पेट खायँ, कुछ भी कम नहीं होगा।" वही हुआ था। बाद में एक दिन (अगहन की १ तारीख को बरकान्ता में) शोभा माँ ने बतलाया, "अन्नकूट की रसोई बनाकर प्रातःकाल बाबा से जाकर कहा, तुम तो लिहाफ में लपटे हुये हो; देखो तो मैं कितनी रसोई बनाकर आई हूँ। इस पर बाबा ने कहा, ''क्यों, तूने बनाया कहाँ? मैंने ही तो बनाया है।"

कुमिल्ला में शोभा माँ से बहुतों ने बहुत-से प्रश्न किए। इस समय देखा गया कि ये पहले की भाँति ध्यान के बाद जबाब नहीं दे रही हैं, स्वाभाविक क्रम से ही जवाब दे रही हैं। उन्होंने निर्विकल्प समाधि के भिन्न-भिन्न स्तर इन व्यक्तियों के समक्ष व्यक्त किये। अपनी अवस्था के सम्बन्ध में कहा, "इस समय आह्निक समास करके सात-आठ घण्टे तक आनन्द-बोध चलता रहता है। कभी-कभी लगता है कि आनन्द का बोध मैं ही कर रही हूँ; फिर देखती हूँ कि मैं नहीं हूँ, किन्तु आनन्द-बोध है।"

प्रश्न—यह क्या निर्विकल्प समाधि की मध्यम अवस्था है?

उत्तर—हाँ।

अगहन की १ तारीख को बरकान्ता में डॉ० सतीश नन्दी ने शोभा माँ से अनेक प्रश्न किये। इस दिन भी शोभा माँ ने स्वाभाविक क्रम से ही अर्थात् प्रश्न के बाद ध्यानस्थ होकर ध्यान-भङ्ग के बाद उत्तर न देकर प्रश्न के तुरन्त बाद ही उत्तर दिए।

डॉ० नन्दी—कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर उसे समझ पाने का क्या उपाय है?

शोभा माँ—कुण्डलिनी शक्ति के जाग्रत होने पर साधना करने के लिए बैठने पर बीच-बीच में शरीर सिहर उठता है और कम्प होता है।

डॉ० नन्दी—गृहस्थों को कौपीन पहनने की आश्यकता है क्या?

शोभा माँ—है, तो भी केवल कौपीन पहनने से ही नहीं होता, उसकी सार्थकता भी देखी जाती है।

डॉ० नन्दी—सार्थकता किस प्रकार की?

शोभा माँ ने कोई उत्तर नहीं दिया। डाक्टर नन्दी के उसे जानने के लिए आग्रह करने पर शोभा माँ ने ध्यानस्थ होकर उत्तर दिया, "वीर्य धारण करने पर ही कौपीन पहनने की सार्थकता है।"

अगहन की २ तारीख से फिर देखा गया प्रश्न करने पर शोभा माँ पूर्ववत् ध्यानस्थ होकर उत्तर जानकर उत्तर दे रही हैं और बीच-बीच में साधारण ढंग से भी उत्तर दे देती हैं। ध्यानस्थ होकर शोभा माँ किस प्रकार उत्तर जान लेती हैं, इस सम्बन्ध में प्रश्न करने पर उन्होंने कहा, "देव-देवी, गुरु जी, ठाकुर जी, दादा गुरु जी इत्यादि को देख पाती हूँ और उनकी बातें सुन पाती हूँ। उनके मुख भी हिलते देखती हूँ।"

अगहन की ९ तारीख को रात में आह्निक करने के समय देखा गया कि शोभा माँ आसन से सिर उठाकर असाधारण रूप में शून्य की ओर देख रही हैं। आँखों में जैसे किसी भय का भाव है। कुछ क्षणों बाद शोभा माँ ने सिर हिलाया। फिर और दिनों की भाँति आसन पर सिर रखकर कुछ क्षण पड़ी रहीं। बाह्य ज्ञान लौटने के बाद बाहर आने पर उनसे सुकुमार बाबू ने पूछा, "आज कोई आए थे क्या?"

शोभा माँ—बाबा, आज मैंने विश्व-रूप देखा है।

सुकुमार बाबू—किस प्रकार?

शोभा माँ—श्रीकृष्ण ने कहा, "पगली माँ, विश्वरूप देखेगी?" मैंने कहा, हाँ देखूँगी, अगर दिखलाओ। श्रीकृष्ण ने कहा, "डरेगी तो नहीं?" मैंने कहा, तुम यदि डरने दो तभी डरूँगी और यदि न डरने दो तो नहीं डरूँगी। तब श्रीकृष्ण ने कहा, "अच्छा, तो देख।" इस बात के साथ-ही-साथ देखती हूँ कि श्रीकृष्ण गायब हैं। उस स्थान पर विराट् शरीर है। उसमें ब्रह्मलोक, सत्यलोक, संसार, नरक सब हैं—और कितने लोक हैं उनकी इयत्ता नहीं। कहीं अप्सराएँ नाच रही हैं। कहीं किसी के पुत्र हुआ है, माता-पिता हँस रहे हैं; कहीं किसी का पुत्र मर गया है, माँ-बाप उसके पास रो रहे हैं। सत्यलोक में कितने महापुरुष बैठे हैं, वे सब पद्मासन पर ध्यान-मग्न हैं। थोड़े ही समय में बहुत-कुछ देख लिया। एक जगह देखा, एक सोने के घड़े में जल है; घड़ा सोने के ढक्कन से ढका है। कितने ही लोग इस जल को पीना चाहते हैं, किन्तु पी नहीं पा रहे हैं। एक जगह एक पोखरे में कितने ही कमल खिले हैं,

जल बड़ा निर्मल है; कोई एक व्यक्ति उस पोखरे में गया और सहसा-सारा जल कीड़ों से भर गया। नरक-कुण्ड में चिता जल रही है और पापी लोग "बचाओ, बचाओ" चिल्ला रहे हैं। कोई-कोई कहते हैं, "महाप्रभु, रक्षा कर"; वे लोग उसी समय चिता से उठकर जा रहे हैं। और भी कितना कुछ देखा, सब कह नहीं पा रही हूँ। तब मैंने कहा, और देखना नहीं चाहती। फिर अखण्ड आनन्द में मग्न हो गई।

शोभा माँ कहने लगीं—"तब श्रीकृष्ण ने मुझसे कहा, 'पगली माँ, डर गई थी?'

मैंने कहा—हाँ।

श्रीकृष्ण—सभी तो डरते हैं।

मैं—सब में क्या तुम नहीं हो?

श्रीकृष्ण—पिता और पुत्र में क्या कुछ भेद नहीं है?

उसके बाद फिर कुछ नहीं देखा।"

अगहन की बारहवीं तारीख को रास-पूर्णिमा थी। इस दिन स्थानीय कचहरी के नायब श्री दुर्गाप्रसन्न वसु के वास-स्थान पर उनके अनुरोध से शोभा माँ ने उनके गुरु श्री श्री गम्भीरनाथ बाबा जी की जन्म-तिथि के उत्सव में भोग-निवेदन किया। ठाकुर जी का घर छोटा था। बेंड़ा (लकडी का घेरा) भी अनेक स्थानों पर टूटा था। जब भोग लगाया जा रहा था तब बाहर से सुकुमार बाबू और डॉ० नन्दी ने भीतर देखा कि एक उज्ज्वल हाथ सारे घर को आलोकित करके संचालित हो रहा है। इसके अतिरिक्त डाक्टर नन्दी ने देखा, जैसे अन्दर सुन्दर वस्त्र में लिपटी एक स्त्री-मूर्ति खड़ी है। दो-तीन मिनट के बाद घर के भीतर की ज्योति गायब हो गई। इसके बाद जब शोभा माँ बाहर आईं तब पूछने पर उन्होंने बताया कि श्री श्री रासेश्वरी आई थीं। उसके बाद घर आकर सुकुमार बाबू और डॉ० सतीश नन्दी ने रासेश्वरी की पूजा का आयोजन किया। शोभा माँ यथारीति ध्यानस्थ होकर पहले ठाकुर जी और बाद में बाबा जी महाराज के खड़े होने की मुद्रा में स्थित हुईं। कई मिनट बाद ठाकुर जी के आसन की रेशमी चादर पर श्वेत चन्दन की दो पैरों की छाप देखी गई। भोग-निवेदन के समय गोपाल-भाव प्रकट हुआ। उसके बाद पास वाले ठाकुर घर में जाकर देखा गया, ठाकुर जी और बाबा जी के चित्रपट के मुख पर भोग की छाप लगी हुई है।

इस दिन रासेश्वरी के किसी भाव या भङ्गी के प्रकट होने की बात डायरी में लिखी नहीं गई है। डायरी में इस दिन की घटनाएँ डॉ० सतीश नन्दी के हाथों लिखी

हुई हैं।

अगहन की २१ वीं तारीख को दोपहर में सुकुमार बाबू ने किसी कारणवश एक बार स्कूल से घर आकर देखा शोभा माँ के माथे पर अत्यन्त कुशल हाथ से तिलक कढ़ा हुआ है। शोभा माँ ने उसके सम्बन्ध में पूछने पर बताया, "दोपहर को भोग-निवेदन के लिये जाने पर बाबा जी महाराज ने कहा, 'इधर आओ, तुम्हें तिलक कर दे रहा हूँ। आज, कल और परसों मैं तिलक कर दूँगा, २४ तारीख बृहस्पतिवार से तुम स्वयं तिलक करना।' यह कहकर उन्होंने बाएँ हाथ से मुँह पकड़ा और तिलक देने लगे, साथ-ही-साथ मेरी बाह्य चेतना जाती रही।"

दूसरे दिन शोभा माँ को तिलक देने के समय सुकुमार बाबू घर पर रहकर यह व्यवहार देखने के लिए यथासमय स्कूल से आ गए। शोभा माँ उनके सामने ही भोग का दूध लेकर ठाकुर-घर में घुस गईं और पाँच मिनट बाद ही दूध का बर्तन हाथ में लिए बाहर आ गईं। इसी बीच तिलक हो गया था। पूछने पर शोभा माँ ने कहा, "आसन पर बैठते ही बाबा जी महाराज और अनेक देव-देवी आ पहुँचे। उसके बाद मुझे कुछ भी नहीं मालूम।" सुकुमार बाबू ने घर में जाकर देखा प्रात:कालीन सन्ध्या के बाद अपना गोपीचन्दन आदि दूर हटाकर जहाँ जिस प्रकार रखे गए थे, वह सब उसी जगह उसी प्रकार रखा हुआ है। दूसरे दिन सुकुमार बाबू के कहने पर शोभा माँ ने शमीज के नीचे नाभिस्थल पर भी तिलक चिह्न लगा हुआ देखा। बारहों अङ्गों पर तिलक था।

अगहन की २५ तारीख से शोभा माँ स्वयं तिलक लगाने लगीं। निम्बार्क सम्प्रदाय में तिलक लगाने को स्वरूप करना कहा जाता है। इनके मत में श्रीकृष्ण के अङ्गों पर भी तिलक-चिह्न हैं। समझता हूँ इसीलिए तिलक लगाने को 'स्वरूप' धारण करना कहा जाता है। जो हो, अगहन की २७ तारीख को दोपहर के भोग का समय आया, तब भी शोभा माँ ने स्वरूप नहीं ग्रहण किया था। शोभा माँ ने कहा, "मुझे स्वरूप करने में देर हो जाती है, बाबा ही स्वरूप कर देंगे। यों भी शमीज पहने रहने पर जहाँ-जहाँ स्वरूप कर नहीं पाती, उन सभी स्थानों पर वे ही स्वरूप कर देते हैं।" भोग दे कर शोभा माँ जब बाहर आईं तब देखा गया कि स्वरूप हो चुका है।

बाबा जी के आदेश से पौष की १ तारीख से शोभा माँ को स्वरूप धारण नहीं करना पड़ा। अगहन की २६ तारीख को सुकुमार बाबू ने शोभा माँ से पूछा, "तिलक करने पर तुम अपनी अनुभूति में क्या किसी परिवर्तन का अनुभव करती हो?"

शोभा माँ ने उत्तर दिया, "और कोई परिवर्तन तो लक्षित नहीं करती, आनन्दानुभूति के समय में वृद्धि अवश्य हो जाती है।" पौष की १ तारीख को आह्निक के समय देखा गया कि शोभा माँ अपने सामने के आसन पर सिर न रखकर आँखें मूँदे बैठी जप कर रही हैं। यह जप एक घण्टे से अधिक चला था, फिर वे प्रणाम करके उठ आईं। इसी समय सुकुमार बाबू ने पूछा, "और दिनों से आज कोई विशेष परिवर्तन अनुभूत हुआ क्या?"

शोभा माँ—हाँ, और दिन नाम-जप के लिए बैठने पर जो जप अपने आप होता था, वह आज नहीं हुआ। आज एक दूसरा मन्त्र भीतर से उठने लगा।

सुकुमार बाबू—बाबा जी महाराज ने कह दिया क्या?

शोभा माँ—पता नहीं चला।

सुकुमार बाबू—जप के समय बाबा जी पास थे क्या?

शोभा माँ—जप पर जब बैठी थी, तब बाबा जी महाराज, ठाकुर जी और अनेक देव-देवियाँ उपस्थित थीं। उसके बाद क्या हुआ, कुछ कह नहीं सकती।

सुकुमार बाबू—जप समाप्त होने पर जब तुमने प्रणाम किया, तब क्या बाबा जी महाराज को देखा?

शोभा माँ—नहीं, देखा नहीं। कब प्रणाम किया, उसे भी कह नहीं सकती।

सुकुमार बाबू—यह मन्त्र-जप किस प्रकार हो रहा था?

शोभा माँ—दोनों भौंहों के सन्धि-स्थल में स्वयं जप हो रहा था। यह अब भी हो रहा है। निरन्तर होता है। मुझे कोई प्रयास नहीं करना पड़ता।

पौष की ६ठी तारीख को सुकुमार बाबू अपनी डायरी में प्रसङ्गक्रम में लिखते हैं—"इसी बीच एक दिन बातों-ही-बातों में शोभा ने मुझसे धीरे-धीरे कहा, 'बाबा जी ने कहा कि, अब से तू जो भी कहेगी वही होगा'।"

इसके बाद क्रमशः कई दिन देखा जाने लगा, शोभा माँ बड़े सबेरे लिहाफ ओढ़ कर जप करते-करते बहुत ऊँचे उठ जाती हैं। बैठकर इतने ऊँचे उठ जाना किसी साधारण मनुष्य के लिए सम्भव नहीं। पौष की ११ वीं तारीख को इस विषय में प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा, "रात के पिछले पहर बाबा आकर पुकारते हैं, 'पगली माँ, उठ!' मैं उठकर जप पर बैठ जाती हूँ। मेरा शरीर खाली रहता है। बीच-बीच में जब मुझे ठण्ड मालूम होती है, तब बाबा की गोद में उठ बैठती हूँ। इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानती।" पौष की १३ वीं और १४ वीं तारीख को उनका आसन से ऊपर उठना दो बाहरी आदमियों ने भी देखा। १४ वीं तारीख को

लिहाफ के नीचे दो मस्तक की तरह देखा गया था।

इसके बाद एक दिन बात हुई थी कि श्री गुरुजी महाराज ने कहा है, उनका साधन जो लोग पायेंगे, उनकी तीन जन्मों के भीतर ही मुक्ति हो जायगी। इस बात को फिर से कहकर पौष की २३ तारीख को सुकुमार बाबू ने पूछा, "तब क्या हम लोगों के लिए गुरु जी को फिर देह धर कर आना पड़ेगा?"

शोभा माँ—बात यह है, जिनको इस जन्म में सद्‌गुरु से दीक्षा मिल जायगी; वे दूसरे जन्म में भी सद्‌गुरु का आश्रय पाएँगे। ऐसा हो सकता है कि जिन्होंने विगतजन्म में गोस्वामी प्रभु या गिरि महाराज जी की कृपा पाई थी, उनमें से किसी-किसी ने इस जन्म में हमारे गुरु जी से दीक्षा पा ली हो।

यह कहकर बातों-ही-बातों में शोभा माँ ने अपने छोटे भाई गौर को (इसकी अवस्था तब दो साल की थी) दिखाकर कहा, इसका सद्‌गुरु की कृपा के बाद दूसरा जन्म है। इसके माथे पर तिलक का चिह्न है। यह कहकर 'डाक्टर को' (डाक्टर नन्दी को?) और सुकुमार बाबू को शोभा माँ ने गौर के माथे पर विगत जन्म का तिलक-चिह्न दिखलाया। शोभा माँ ने और भी कहा, "गौर पूर्वजन्म में कौन था, यह मैं जानती हूँ, माँ और तुम कौन थे, यह भी जानती हूँ।"

नव

यह परिच्छेद भी शिशिर बाबू की डायरी से सुकुमार बाबू की डायरी में उद्धृत अंश के आधार पर लिखा गया है।

शिशिर बाबू की डायरी के इस अंश को २२ तारीख पौष से १९ तारीख माघ तक के समय से सम्बद्ध समझना होगा। इस समय के बीच शिशिर बाबू-कृत सभी प्रश्नों के उत्तर शोभा माँ ने ध्यान में जानकर ध्यान हटने के बाद दिये थे। इसके पहले शिशिर बाबू के किसी-किसी प्रश्न के उत्तर परवर्त्ती उत्तर के अनुसार भूल प्रतिपन्न हुये थे। ऐसा होने का क्या कारण है पूछने पर उत्तर मिले थे कि शोभा माँ ने पहले भी ठीक ही कहा था, किन्तु उन-उन उत्तरों को लिखने के समय लेखकों ने भूल की है।

एक प्रश्न का उत्तर मिला, शोभा माँ को इस समय पूर्णब्रह्मज्ञ कहा जा सकता है। पाठकों को याद होगा पहले ही मालूम हो गया था कि १ तारीख पौष के बाद से २ मास १३ दिनों के भीतर वे पूर्णब्रह्मज्ञा हो जायँगी।

प्रश्न—पातञ्जल दर्शन की कैवल्यावस्था में देह नहीं रहती, ऐसा बहुतेरे कहते हैं, इसका उत्तर क्या है?

उत्तर—तो फिर तुम्हारा यह साधक किस प्रकार है? (कहने की आवश्यकता नहीं कि इस जगह शोभा माँ को ही लक्ष्य किया गया है।)

प्रश्न—हम लोगों का यह साधक जब पूर्ण ब्रह्मज्ञ हो गया है तो क्या सभी प्रश्नों के उंत्तर दे सकता है?

उत्तर—हाँ।

प्रश्न—अपनी अवस्था वह अब भी पूर्णतया समझता है या नहीं?

उत्तर—नहीं।

प्रश्न—फाल्गुन की इस (अर्थात् १३ वीं) तारीख के बाद से सब कुछ समझ सकेगा क्या? अथवा उसके पहले ही?

उत्तर—इस तारीख के बाद से।

प्रश्न—इस साधक की जब पूर्णब्रह्मज्ञ अवस्था है तब तो उसे सब कुछ ही जानना चाहिए। किन्तु इस पञ्चम भूमि में भी यह अपनी अवस्था भली-भाँति समझ नहीं सकेगा, इन दोनों में क्या सङ्गति है?

उत्तर—यह सब समझकर भी नहीं समझता। सोचता है, यह सब गुरु की कृपा है।

एक प्रश्न के उत्तर में मालूम हुआ, बाबा सन्तदास जी ने प्रयाग के कुम्भ मेले में जब अपने गुरु श्री श्री रामदास काठिया बाबाजी के साथ साक्षात्कार किया तब वे (काठिया बाबा) पञ्चम भूमि पर उठे थे। इस भूमि के बीच में ही वे पूर्ण ब्रह्मज्ञ हुये थे।

निम्नलिखित तथ्य भी विभिन्न प्रश्नों के उत्तर में व्यक्त हुआ था:—

महाभारत के स्वर्गारोहण पर्व में पञ्चपाण्डव के महाप्रस्थान का जो विवरण है, उसमें बहुत-सी कथाएँ ऋषि-वर्णित नहीं हैं। वस्तुतः अर्जुन और द्रौपदी का पृथ्वी पर देहपात नहीं हुआ। युधिष्ठिर, अर्जुन और द्रौपदी तीनों व्यक्ति सशरीर स्वर्ग गये। वहाँ देह-त्याग करके अर्जुन वैकुण्ठ गए, शेष दोनों ऊर्ध्वस्थ ब्रह्मलोक गए। (ब्रह्मलोक के दो स्तर हैं—एक को निम्नस्थ ब्रह्मलोक और दूसरे को ऊर्ध्वस्थ ब्रह्मलोक कहां गया है।) अन्य तीनों पाण्डव सशरीर स्वर्ग नहीं जा सके; किन्तु शरीर त्यागने पर वे भी ऊर्ध्वस्थ ब्रह्मलोक में ही गये। जैसा कि लोग जानते हैं, युधिष्ठिर के नरक-दर्शन का वृत्तान्त भी ठीक नहीं है। उन्होंने श्रीकृष्ण के सिखाने पर ही 'हत इति गजः' कहा था, अतः उससे वे पाप-भागी नहीं हुए। और भी विदित हुआ—श्रीकृष्ण पाण्डवों के केवल मित्र नहीं थे, उनके दीक्षा-गुरु भी थे; और उन्होंने अपने गुरु से जो मन्त्र पाया था (डायरी में इसे १ नं० मन्त्र के रूप में लिखा गया था) उस मन्त्र को ही उन लोगों को दीक्षा में दिया था।

इन्द्र के सहस्रलोचनत्व की बात सच है—वह देव-विभूति है। अहल्या-गमन और अहल्या के पत्थर होने का बात सच नहीं है।

प्रश्न—द्रौपदी के पाँच पति होने से उसके सतीत्व को दोष लगा या नहीं?

उत्तर—नहीं, क्योंकि माता की आज्ञा के पालन के लिए भगवान् श्रीकृष्ण की अनुमति के अनुसार पाँचो पाण्डवों ने द्रौपदी का पाणि-ग्रहण किया था। इसके अतिरिक्त अधिकार-भेद का भी विचार करना होगा।

भागवत् के सभी अंश ऋषि-प्रणीत नहीं हैं।

चण्डाल-रूपधारी महादेव ने शङ्कराचार्य को शैव मन्त्र की दीक्षा दी थी। 'आनन्दलहरी' आदि स्तोत्र इसके बाद लिखे गये थे। जिस दिन वे महादेव द्वारा दीक्षित हुए, उसी दिन उन्होंने पञ्चम भूमि पर पदार्पण किया। अब से शिव ही उनके इष्ट हुए। तथापि वे वेदान्त के उच्च साधक थे। सगुण उपासना के फल-स्वरूप उन्होंने शरीर त्यागने पर किसी लोक में न जा कर सीधे परब्रह्मरूपता प्राप्त की। (यहाँ यह कह देना आवश्य है कि, पूर्णब्रह्मज्ञता के ऊपर भी एक अवस्था है, शोभा

माँ उसे परब्रह्मरूपता कहती हैं। (इस अवस्था को कोई-कोई साधक इस देह में ही प्राप्त कर चुके हैं; यद्यपि अवश्य ही उनकी संख्या बहुत कम है।)

प्रश्न—संन्यास लेने पर जाति-भेद रह जाता है क्या?

उत्तर—तत्त्वत: न रहने पर भी व्यवहार में रक्षा करना अच्छा है। समाज में जिससे उच्छृंखलता न आवे, उसके लिए सावधान रहने की आवश्यकता है।

पूस की २७ वीं तारीख को शिशिर बाबू ने जब शोभा माँ के पूर्व जन्म का हाल जानना चाहा, तब वे समाधिस्थ होकर बोलीं—पूर्व जन्म के पिता का नाम था प्रमोदचन्द्र चट्टोपाध्याय और माता का अक्षया सुन्दरी देवी था। उनका अपना नाम था कात्यायनी। आठ साल की अवस्था में कात्यायनी को भाग्यवश देवी कृपा-लाभ हो गया। उस समय उनका कोई गुरु नहीं था। त्रिपुरा जिले के कोण्डा गाँव में उनके पिता रहते थे। (बाद में सुना है कि इस गाँव में उनके पूर्व पुरुषों का निवास नहीं था। प्रमोद चट्टोपाध्याय ने ही दूसरे स्थान से आकर इस गाँव में घर बना लिया था।) कात्यायनी की अवस्था जब १० वर्ष की थी, तब उनके माता-पिता कोण्डा ग्राम के घर को बेचकर काशी चले गये और वहीं रहने लगे। सुकुमार बाबू के घर में जहाँ अब चण्डी-मण्डप* है वहीं कात्यायनी ने पहले देवी-कृपा प्राप्त की।

इस बार कोण्डा में जन्म लेने का कारण यह था कि इस घर को छोड़ने में कात्यायनी को कष्ट हुआ था। इसके अतिरिक्त इस घर में बहुत दिनों से निरन्तर देवी-पूजा होती आ रही थी।

कात्यायनी ने काशी में रहकर साधन-भजन किया और पचास वर्ष की अवस्था में कुमारी ही रहकर काशी में देह-त्याग करके देवीलोक को गमन किया।

बाद में सुना है कि शोभा माँ देवीलोक में ढाई सौ वर्ष रहीं। देवीलोक की अधिष्ठात्री देवी काली जी हैं। अब शायद समझ में आ जायगा कि शोभा माँ में काली का आवेश क्यों बार-बार होता रहा और अब भी होता है।

प्रमोद चट्टोपाध्याय और उनकी पत्नी देहान्त होने पर सत्यलोक को गए थे।

सुकुमार बाबू और उनकी स्त्री पूर्व जन्म में ब्रजवासी कायस्थ थे और पति-पत्नी ही थे। उन्होंने कात्यायनी की पूजा करके ऐसी कामना की थी कि वे अगले जन्म में देवी को पुत्री रूप में पावें।

---

* १३४२ साल के १४ वें फाल्गुन को इस घर में बाबा सन्तदास जी महाराज का तैलचित्र प्रतिष्ठित हुआ। तब से यहाँ इस चित्र की ही सेवा-पूजा होती आ रही है।

कर्नल अल्काट को एक महापुरुष ने दर्शन देकर एक पगड़ी दी थी, यह बात सच है।

माघ की १३ वीं तारीख को सुकुमार बाबू की डायरी में मिला—इस दिन शोभा माँ ने घर के प्रत्येक व्यक्ति के पूर्वजन्म का हाल बताया और कौन किसका शिष्य था यह भी बताया। माघ की १५ वीं तारीख को शिशिर बाबू ने सुकुमार बाबू से कहा कि शोभा माँ ने उन्हें अपने एक सौ जन्मों की बात बताई है। रात में जब सुकुमार बाबू ने इस विषय में शोभा माँ से पूछा तब उन्होंने कहा, "हाँ, मैंने देखा है, जिस प्रकार बाइस्कोप के पर्दे पर चित्र के बाद चित्र उतरते हैं, वैसे ही मेरे सौ जन्मों के नाम, ग्राम और माता-पिता के चित्र एक के बाद एक उतर आए।"

दस

सुकुमार बाबू के कोण्डा ग्राम के घर में १३४२ (बंगला) साल के १४ वीं फागुन की तारीख को बाबा जी महाराज के तैल चित्र की प्रतिष्ठा हुई। और शोभा माँ का जन्म-दिन भी १४ वाँ फागुन था, यद्यपि उसे लक्ष्य न करके ही तैलचित्र की प्रतिष्ठा का दिन निश्चित हुआ था। इस बार (१३४३) १२ वीं कार्त्तिक की तारीख को बाबा जी महाराज ने बताया था कि, शोभा परवर्ती १३ वें फागुन के बीच पूर्ण ब्रह्मज्ञता प्राप्त कर लेगी। शिशिर बाबू की डायरी में देखने में आया कि इसीलिए १२ वीं कार्तिक की तारीख को ही प्रस्ताव हुआ था कि इस बार १४ वें फागुन को गुरु महाराज के तैलचित्र की प्रतिष्ठा का वार्षिकोत्सव समारोह के साथ मनाया जायगा। इस दिन शोभा माँ ने शिशिर बाबू से कहा, "भैया, इस बार उस पूर्णब्रह्मज्ञ लड़की को लाना होगा।"

१५ वाँ फागुन (१३४३)। स्थान कोण्डा। उत्सव चल रहा है। अभ्यागतों में गोकर्ण हाईस्कूल के एक शिक्षक ने 'जितने मत उतने पथ' के सम्बन्ध में शोभा माँ से कुछ तर्क किया। शोभा माँ ने इस मत का दोष इस प्रकार समझा दिया— "कलकत्ता पहुँचने के हजार रास्ते हो सकते हैं, किन्तु देश में जितने रास्ते हैं सभी कलकत्ता नहीं पहुँचते।"

१९ वें फागुन को नगर-कीर्तन में शोभा माँ ने भावस्थ होकर कीर्तन किया। भाव तीन घण्टे तक रहा। शोभा माँ जब बीच-बीच में त्रिभङ्ग होकर कहती थीं, 'एक बार तुम सब हरि बोलो', तब जनता की आँखे आँसुओं से छलछला उठती थीं और घर के सब लोग रोते-रोते व्याकुल हो गए थे। सुकुमार बाबू ने डायरी में लिखा है, "ऐसा प्राणों को मतवाला बना देनेवाला कीर्तन किसी ने और कहीं नहीं देखा।"

इस उत्सव के उपलक्ष्य में एक दिन इस अञ्चल के एक वयोवृद्ध विद्वान् और प्रतिष्ठित पाठक ने श्रीमद्भागवत का पाठ किया। उन्होंने यह कहकर पाठ आरम्भ किया कि श्रीमद्भागवत ऐसा गम्भीरार्थक शास्त्र है कि स्वयं भगवान् ने कहा है, भागवत का मर्म "अहं वेत्ति शुको वेत्ति व्यासो वेत्ति न वेत्ति वा"—मैं जानता हूँ, शुकदेव जानते हैं, व्यास जानते हैं या नहीं जानते। ये बातें माँ को रुचीं नहीं। इसीलिए वे पाठ आरम्भ होने के कुछ ही क्षण बाद पाठ-स्थान से उठ गईं। वे लौट नहीं रही हैं, यह देखकर श्री श्री बाबाजी महाराज के शिष्य और माँ के प्रति भी

श्रद्धालु श्री शशाङ्क भट्टाचार्य* महोदय ने माँ के पास जाकर कहा, "माँ, एक देशमान्य वृद्ध ब्राह्मण पण्डित पाठ कर रहे हैं, वहाँ से तुम्हारा उठ आना अच्छा नहीं लगता, तुम फिर चलो।" उनकी बात पर माँ लौट आईं और पाठ समाप्त होने पर पण्डित महोदय से उन्होंने कहा, "यह वचन, जिसमें कहा गया है कि भागवत् का मर्म शुक जानते हैं व्यास जानते या नहीं जानते, इसका मूल क्या है?"

पण्डित—यह कहाँ है, सो मैं ठीक नहीं जानता, तथापि यह ऋषि-प्रणीत शास्त्र से ही उद्धृत है, इसमें सन्देह नहीं।

माँ—किसी दूसरे की रचना भी तो हो सकती है?

पण्डित—नहीं; ऋषि के अतिरिक्त अन्य किसी को "अहं वेत्ति" ऐसा लौकिक व्याकरण से दूषित भाषा का प्रयोग करने का साहस नहीं होता।

माँ—जिन्होंने भागवत् की रचना की है, वे उसका मर्म नहीं जानते, उनके पुत्र जानते हैं, यह कैसी बात?

पण्डित—व्यास की अपेक्षा शुकदेव आध्यात्मिक विषय में आगे बढ़े हुए थे, यह तो सभी लोग मानते हैं।

माँ—प्रमाण क्या है?

पण्डित—प्रमाण यह कि एक बार कतिपय अप्सराएँ बन के बीच एक सरोवर में निर्वस्त्र स्नान कर रही थीं, उसी समय शुकदेव उस सरोवर के तीर से होकर चले गए। उन्हें देखकर अप्सराओं को कुछ भी लज्जा का भाव नहीं हुआ। कुछ क्षणों बाद जब व्यास उसी राह से आए, तब दूर से ही उन्हें देखकर उन सब ने दौड़कर वस्त्रादि से अपना शरीर ढक लिया। यह क्या शुकदेव के माहात्म्य का आधिक्य प्रकट नहीं करता।

माँ—नहीं भी प्रकट कर सकता। शुक थे शुद्ध सत्त्व गुण-सम्पन्न पुरुष। उनके सत्त्व गुण के प्रभाव से अप्सराओं के मन में लज्जा-जनित चञ्चलता उत्पन्न नहीं हुई और व्यास थे त्रिगुणातीत पुरुष, उन्हें देखकर केवल पुरुष समझकर अप्सराओं ने स्त्री-सुलभ संस्कार के अनुसार लज्जा का अनुभव किया था।

माँ की हृदयग्राही यह युक्ति सुनकर पण्डित महोदय भी शायद कुछ मुग्ध हो गये थे। उन्होंने फिर कुछ नहीं कहा।

इस मास के बीतते-बीतते सुकुमार बाबू डायरी में अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं, "शोभा माँ इस समय उषा-आदि के साथ खूब खेल-कूद करती। देखने से ऐसा

---

* इस वृत्तान्त का विवरण मैंने इन्हीं के मुँह से सुना है।

नहीं लगता कि वह आध्यात्मिक जगत् में इतने आगे पहुँच चुकी है।" उन्होंने शोभा माँ से पूछा—"शोभा, तुम्हारी वर्तमान अवस्था कैसी है?"

शोभा माँ—अब वह आनन्द-बोध निरन्तर चल रहा है।

सुकुमार बाबू—तब यह बीच-बीच में तुम्हें जो छीना-झपटी करते देखता हूँ, यह सब क्या है?

शोभा माँ—वह बाहरी है। ...... दो अवस्थाएँ एक साथ चल सकती हैं।

इसके पहले एक दिन (१७ वें माघ को) सुकुमार बाबू ने कहा था, "१८ वें फागुन को तुमसे कुछ चाहूँगा। हमें यह देना होगा।"

शोभा माँ—क्या?

सुकुमार बाबू—शक्ति-सञ्चार।

शोभा माँ—उससे कुछ नहीं होता। यही ले लो, इस शिशु को उठाकर यदि उस (चित्र के) फ्रेम को पकड़ने दूँ तो वह उतनी ही देर इसे छुए रह सकेगा जितनी देर मैं उसे पकड़े रहूँगी। छोड़ देने पर फिर फ्रेम नहीं पाएगा। केवल यही याद रहेगा कि एक बार उसने फ्रेम पाया था। लाभ कुछ नहीं होगा।

चैत की सातवीं रात के १२ बजे श्रीमती जेनिंग्स (Mrs. Roorna Jennings) शोभा माँ को देखने बरकान्ता गईं। वे मार्किन-देश की महिला थीं और कलकत्ते में विश्व धर्म-सम्मेलन के उपलक्ष्य में आई थीं। उन्होंने इस सम्मेलन के सभापति सर फ्रान्सिस इयंग हज़वैण्ड के मुख से शोभा माँ की "remarkable spiritual attainments" (अद्भुत आध्यात्मिक उपलब्धि) का समाचार पाकर उनसे भेंट करने के अभिप्राय से सुकुमार बाबू को एक पत्र लिखा; फिर सुकुमार बाबू के सादर निमन्त्रण पर बरकान्ता चली गईं। आधुनिक जगत् के सबसे सभ्य देश की एक सङ्गति-सम्पन्न महिला के लिए बङ्गाल के ग्रामीण अञ्चल की अनेक असुविधाओं और भय की परवाह न करके कलकत्ते से बरकान्ता तक यात्रा करना आध्यात्मिक विषय में कितने उत्कृष्ट आग्रह का परिचायक है, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। लेकिन यह जन्मान्तरीण पुण्य द्वारा निर्दिष्ट योगायोग का फल है, यह समझने में कर्मवादी हिन्दु को कष्ट नहीं होता। जो हो, बरकान्ता पहुँचने पर रात के बाद सबेरे मिसेस जेनिंग्स ने सुकुमार बाबू के ठाकुर-घर में जाकर घुटने टेककर बाबाजी महाराज, ठाकुर जी आदि के चित्रों के प्रति सम्मान-प्रदर्शित किया। फिर जलपान करते-करते वे बहुत से आध्यात्मिक तत्त्वों के सम्बन्ध में शोभा माँ से प्रश्न करने लगीं। उनका प्रश्न शोभा माँ को बँगला में और शोभा माँ

का उत्तर उन्हें अंग्रेजी में अनूदित कर दिया गया। बहुत-से प्रश्नों का बँगला में अनुवाद नहीं करना पड़ा; मेम का प्रश्न सुनकर ही शोभा माँ ने उनके उत्तर दिए थे। इस पर मेम बहुत चकित हुई थीं।

शोभा माँ के उत्तर पर मेम बड़ी प्रसन्न हुई। भोग-निवेदन के बाद चित्र के मुख पर भोगांश देखकर वे विस्मित हुईं।

सद्गुरु के लिए उनकी उत्कट व्याकुलता देखी गई थी। गुरुवरने के सम्बन्ध में शोभा माँ ने पहले कोई उत्तर नहीं दिया। मेम के बहुत हठ करने पर उन्होंने कहा, "आज रात में तुम्हें जैसी प्रेरणा मिले, उसी के अनुसार काम करना।"

दूसरे दिन (९वें चैत को) सुकुमार बाबू आदि ने शोभा माँ के सहारे गुरु-पूजा की। शोभा माँ के आवेश सब पूर्ववत् थे। मेम ने उसे देखा। उसके बाद वे दीक्षा के लिए प्रस्तुत हुईं। उषा ने तिलक कर दिया। शोभा माँ ठाकुर-घर में जाकर मन्त्र लिख लायीं। फिर देखा गया, शोभा माँ ठाकुर घर में जाकर हाथ में माला लेकर शून्य में जैसे किसी के चरणों से उसका स्पर्श करा रही हैं। इस समय उनके मुख पर अपूर्व मृदु मुस्कान देखने में आई थी। यथारीति दीक्षा हुई। मेम का नाम हुआ सुलभा दासी। उन्होंने गुरु-प्रणामी में ३० रुपए बाबा जी महाराज के आसन के पास रखकर चित्र के पैर पर पुष्पाञ्जली दी और घुटने टेककर कृतज्ञता ज्ञापित की।

चैत्र की १० वीं तिथि को प्रातः समय मिसेस जेनिंग्स ने डेढ़ घण्टे तक जप किया था और कुछ-कुछ अनुभव भी किया था, ऐसा सुकुमार बाबू की डायरी में लिखा हुआ है। उन्होंने शोभा माँ की अनुमति लेकर अपनी अनुभूतियों को सुकुमार बाबू को लिखकर दिखाया था।

इसी दिन वे कुमिल्ला आईं। सुकुमार बाबू, शोभा माँ आदि भी उनके साथ आए। सभी शोभा माँ के ताऊ वरदा बाबू के घर गए। वहाँ कुमिल्ला की थियोसोफिकल सोसाइटी के कई सदस्यों के अनुरोध से मिसेस जेनिंग्स ने शोभा माँ को किस रूप में देखा इस विषय पर महेश प्रांगन में एक भाषण दिया। उसका एक विवरण अमृत बाजार पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। मिसेस जेनिंग्स साड़ी पहनकर और तिलक लगाकर सभा में गईं। शोभा माँ ने ही अपनी एक साड़ी उन्हें पहना दी थी। इसी दिन रात में मिसेस जेनिंग्स कुमिल्ला से चली गईं।

इन सब घटनाओं का विवरण प्रचारित होने पर अनेक स्थानों पर अनेक मतों के लोगों के बीच अत्यन्त स्वाभाविक भाव से जिस प्रकार अत्यन्त कौतूहल जगा, उसी प्रकार बहुतों के मन में एक विरोध का भाव भी धीरे-धीरे घनीभूत होकर

उठने लगा। चैत की १२ वीं तारीख को शोभा माँ आखाउड़ा के निकटवर्ती गङ्गासागर नामक एक ग्राम में गईं। उस दिन दोलपूर्णिमा थी। बहुत-से लोग शोभा माँ को देखने आए और उनके साथ धर्म-विषयक बहुत-से तर्क किए। शोभा माँ ने इस दिन की बातचीत में सद्गुरु से प्राप्त दीक्षा के ऊपर बहुत जोर दिया। गुरुता-व्यवसायी किन्हीं-किन्हीं ब्राह्मणों को यह बिल्कुल ही रुचा नहीं। देवताओं के द्वारा भोग का स्थूल-रूप में ग्रहण भी असम्भव व्यापार है, ऐसी धारणा से बहुतों ने उस विषय में बहुत-से प्रश्न किये और वह जो सम्भव है, इसे समझाने की शोभा माँ ने चेष्टा की थी।

वैशाख मास (बंगला १३४४ साल) के अन्तिम दिनों में सुकुमार बाबू को एक चिट्ठी से विदित हुआ कि एक व्यक्ति ने अमृत बाजार पत्रिका में इस भाव का एक पत्र प्रकाशित किया है कि शोभा माँ बाबा सन्तदास जी की शिष्या नहीं हैं। इससे सुकुमार बाबू के मन में कुछ क्षोभ उत्पन्न हुआ था। क्योंकि शोभा माँ के नाम-ग्रहण का अनुष्ठान यथानियम ही हुआ था और शोभा माँ ने नाम-प्राप्ति के बाद दो रुपये देकर यथानियम गुरु को प्रणाम भी किया था। अनुष्ठान का कोई अङ्ग छूटा नहीं था। अब पत्रिका के स्तम्भ में लेखक-विशेष के मनमाने सत्यापलाप का संवाद पाकर सुकुमार बाबू और उनके साथ ही उषा ने भी निश्चय किया कि ऐसे मिथ्या प्रचार का एक प्रति विधान आवश्यक है। किन्तु शोभा माँ ने इस बात को सुनकर यही कहा, "यह भी गुरु जी की ही लीला है।"

सुकुमार बाबू के मन को इस उत्तर से प्रबोध नहीं हुआ। उन्होंने मन-ही-मन गुरु जी को बार-बार उपालम्भ देना आरम्भ किया। अपराह्न में स्कूल की छुट्टी होने पर वह जब घर लौट आये शोभा माँ ने उन्हें ठाकुर-घर में बुलाकर कहा, "बाबा ने कहा है, 'सुकुमार से कहो वह इसके लिए इतना सन्तप्त क्यों होता है? यदि कोई कहे कि सतू उसका लड़का नहीं है, तो इस पर वह क्रुद्ध होगा या केवल हँसेगा'।"

वैशाख की २६ वीं तारीख को भी अनेक गुरु भाइयों तथा और भी बहुत-से लोगों का शोभा माँ के ऊपर पहले विश्वास और फिर-अविश्वास के विषय में आलोचना करके सुकुमार बाबू मन-ही-मन बहुत क्षुब्ध हुए और इस विषय में एक समुचित व्यवस्था करने के लिए शोभा माँ से बाबा जी महासज के निकट अपनी प्रार्थना जता देने को कहा। शोभा माँ पहले तो राजी नहीं हुईं; बहुत कहने-सुनने पर वे राजी हुईं और ठाकुर-घर में जाकर बाबा जी महाराज से इस बात का निवेदन् करके लौटने पर यह अभिप्राय व्यक्ति किया, "बाबा जी ने कहा है, 'दो दल तो

रहेंगे ही; अन्यथा प्रकृत विश्वासी-लोग अपने अन्तर में जो तृप्ति-बोध करते हैं वह नहीं होता? प्रचार का जितना प्रयोजन होगा, सब मैं ही करूँगा'।"

सावन की १९ वीं तारीख को सुकुमार बाबू ने विरोधियों के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए विरोध के प्रति असहिष्णु होकर फिर शोभा माँ से कहा कि, जब तुमने ऐसी अवस्था प्राप्त कर ली है कि जो चाहोगी वही होगा, तब यह जो विरोध बढ़ रहा है, उसके दमन की इच्छा करने से ही तो सब हो जायगा। इच्छा करने में दोष क्या है?

उसके उत्तर में शोभा माँ ने कहा, "इच्छा करने से वह हो जायगा, इतने से ही तो कोई इच्छा उत्पन्न नहीं हो जाती। देखो, तुम स्कूल के हेडमास्टर हो, यदि चाहो तो स्कूल में छुट्टी कर सकते हो, ऐसा करने पर छात्र कितने प्रसन्न होते हैं। किन्तु क्या तुम यों ही स्कूल में छुट्टी दे देने की इच्छा करते हो?"

ग्यारह

अब से हम सुकुमार बाबू या शिशिर बाबू की डायरी का अनुसरण करना आवश्यक नहीं समझते। शोभा माँ की साधनावस्था के सम्बन्ध में बाहरी लोगों की कौतूहल-निवृत्ति के लिए यथेष्ट विवरण दिया जा चुका है, ऐसा मैं समझता हूँ। फागुन की १८ तारीख को उनकी साधनावस्था की पूर्ण परिणति हुई। इस समय उनके परम कृपामय गुरुदेव ने उनके ज्ञान के सभी आवरण दूर हटा दिए। तब से किसी विषय के पूछने पर उन्हें ध्यानस्थ होने की आवश्यकता नहीं रही। सुकुमार बाबू और शिशिर बाबू की सुन्दर विवेचना के फल-स्वरूप शोभा माँ की साधनावस्था के अनेक तथ्य साधारण जन को दृष्टि-गोचर होने लगे हैं। यह सच है कि यह भी उनके गुरु की इच्छा से ही हुई थी और उसके प्रमाण भी डायरियों में हैं। शोभा माँ की पूर्व जन्म की अटल साधना के पुरस्कार-दान के उद्देश्य से अथवा उनके द्वारा जगत् के किसी महान् उपकार-साधन के अभिप्राय से भगवान् ने उन्हें इसी रूप में अतिद्रुत और असाधारण रूप में आध्यात्मिक उन्नति की चरमावस्था पर प्रतिष्ठित किया है, उसे एकमात्र वे ही अथवा शोभा माँ के गुरु जी ही जानते हैं। उन्हें लोक-समाज में प्रचारित करने के लिए आज तक कोई विशेष चेष्टा नहीं हुई है। उनके गुरुदेव ने कहा है, "जितने भी प्रचार की आवश्यकता होगी, मैं ही करूँगा।" कार्यतः वही हो भी रहा है। धीरे, बहुत धीरे किसी व्यक्ति विशेष या संघ विशेष द्वारा परिकल्पित या नियन्त्रित चेष्टा के बिना ही पूर्व बङ्ग के सुदूर एक ग्राम से बंगाल-प्रदेश के नाना अञ्चलों में और बंगाल से बाहर भी नाना स्थानों में इस ब्रह्मज्ञा बालिका के नाम और माहात्म्य की कथा कौतूहली लोगों के कानों में पहुँच रही है और किसी-किसी जनों के हृदय को भी स्पर्श कर रही है। श्री भगवान् की सभी व्यवस्थाओं की ही भाँति यह नियत क्रम से ही हो रहा है। शोभा माँ में भगवान् को लेकर कभी किसी तरह का मतवालापन नहीं है; क्योंकि इनकी शिक्षा है ज्ञानमिश्र भक्तियोग या भक्तिमिश्र ज्ञानयोग, जिसमें कोई मतवालापन हो ही नहीं सकता। मतवालापन शीघ्र प्रचार का एक सुपरीक्षित सहज उपाय होने पर भी इस क्षेत्र में वह अचल है। ज्ञानी-श्रेष्ठ सुधीर प्रकृति महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज ने शोभा माँ को काशी ले जाकर उनके मुख से विविध तात्त्विक बातें सुनने और जिज्ञासु जगत् को सुनाने की जो परिकल्पना की थी, वह शोभा माँ के प्रचार की दृष्टि से अनुकूल थी इसमें सन्देह नहीं; किन्तु जिस कारण वह परिकल्पना कार्यरूप

में परिणत न हो सकी, उसका उल्लेख पहले ही हो चुका है। तथापि काशी जाने और आने के रास्ते में शोभा माँ को जो डेढ़ मास से कुछ अधिक समय तक कलकत्ते में रहना पड़ा उससे बहुत से जिज्ञासु जनों को उनके संस्पर्श में आने का सुयोग मिला और आशा है कि अपने-अपने अधिकार के अनुसार उन सबका कुछ-न-कुछ उपकार हुआ है। इसे महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज के शुभ संकल्प का एक अवान्तर सुफल स्वीकार करना ही पड़ेगा।

कलकत्ते में शोभा माँ को जो लोग देखने आए उनमें अपेक्षाकृत थोड़े ही लोग तत्त्व-जिज्ञासु थे। इनके साथ शोभा माँ का जो विचार-विमर्श हुआ, उसके विषय में सावधानी से कुछ कहने पर यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय-सम्मत द्वैताद्वैतवाद का ही समर्थन और व्याख्या की। उनके गुरु बाबा सन्तदास जी महाराज इसी सम्प्रदाय के व्यक्ति थे और बहुत-सी पुस्तकों में उन्होंने इसी सम्प्रदाय के मतों की व्याख्या की है। निश्चय ही गुरु-शिष्य-परम्परा-क्रम में और व्यक्तिगत प्रतिभा या अनुभूति की विशेषता के अनुसार साम्प्रदायिक मतों के बीच कुछ-कुछ भेद उत्पन्न हो ही जाता है। इसी से सम्प्रदाय के बीच शाखाओं-प्रशाखाओं का जन्म होता है। प्राय: सभी सम्प्रदायों में यही हुआ है। बाबा जी महाराज जिस प्रकार भिन्न सम्प्रदाय के लोगों के साथ तर्क करके अपने मत के स्थापन की चेष्टा करते थे, उसी प्रकार अपने सम्प्रदाय के बहुत-से लोगों के साथ तर्क करके जिसे वह निम्बार्क सम्प्रदाय का विशुद्ध मत समझते थे, उसी मत में उन लोगों को लाने की चेष्टा करते थे। शोभा माँ ने सोद्देश्य निम्बार्क-सम्प्रदाय-सम्मत मतावली की व्याख्या या प्रचार किया, यह कथन विशेषज्ञों के निकट अधिक मूल्य नहीं रखता। बाबा जी महाराज की मतावली से भी इनकी मतावली किसी-किसी विषय में विशेषता रखती है या नहीं, यह भी विशेषज्ञों के लिए विचारणीय है। समझता हूँ कि इस पुस्तक के अधिकांश पाठकों को इतना ही बता देना यथेष्ट होगा कि शोभा माँ की विद्या का सामान्य अंश भी पुस्तक द्वारा प्राप्त नहीं है; क्योंकि उन्होंने वस्तुत: कोई पुस्तक उस प्रकार की पढ़ी ही नहीं। और उनके आस-पास रहने वालों में से कोई भी व्यक्ति दर्शन या साधन-शास्त्र में इतना निष्णात नहीं, जिससे यह अनुमान सङ्गत प्रतीत हो कि इस सत्रह वर्ष की बालिका ने उनके मुँह से सुन-सुनकर अध्यात्म जगत् के उच्च, उच्चतर, उच्चतम तत्त्वों को इस प्रकार आयत्त कर लिया है कि जिस किसी जिज्ञासु के जिस किसी प्रश्न का शास्त्र-सम्मत और साधकों की अनुभूति द्वारा समर्थित उत्तर एक मुहूर्त्त भी बिना सोचे-विचारे दे

सके। उनके सत्त्वोज्ज्वल चित्त में सत्य जैसा प्रतिभात होता है वे उसी प्रकार उसे कह देती हैं। उसमें दुर्बोध्यता कुछ भी नहीं होती। अत्यन्त कठिन तत्त्व भी उनकी व्याख्या में बहुत सरल हो जाता है। सुकुमार बाबू अपनी डायरी में एक स्थान पर (बंगला १३४४ साल की श्रावण की २९ वीं तिथि में) लिखते हैं—"मैं 'गुरु-शिष्य-संवाद' में से द्वैताद्वैतवाद पढ़ रहा था; किन्तु वैसा कुछ समझ में नहीं आ रहा था। शोभा माँ ने जब मुझे मतवाद समझा दिया, तब मुझे लगा कि मैंने बहुत कुछ समझ लिया है। पुस्तक पढ़कर समझ नहीं पा रहा था।" सुकुमार बाबू एक सुशिक्षित व्यक्ति हैं। अध्ययन और दर्शन में यही अन्तर है।

धर्म के विषय में कुछ कहने पर सभी बातें सभी सम्प्रदायों को रुचतीं नहीं; जहाँ मतान्तर है, वहीं कहा-सुनी होती है। शोभा माँ को इस कहा-सुनी की सम्भावना से सदा बचकर चलते देखा है; अपने चित्त में उन्होंने जिसे सत्य समझा उसे कभी छिपाते भी नहीं देखा। गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय के मत को लक्ष्य करके एक सुपण्डित अध्यापक द्वारा की गई आलोचना के अवसर पर शोभा माँ ने कहा था, श्रीकृष्ण तत्त्व भी अन्तिम तत्त्व नहीं है। उसके बाद भी तत्त्व हैं; जैसे कार्यब्रह्म तत्त्व और उसके भी ऊपर परब्रह्मतत्त्व। केवल श्रीकृष्ण को जान लेना ही सब कुछ जान लेना नहीं है। दो ऊर्ध्वतर तत्त्वों की प्राप्ति आवश्यक है। इस पर समझता हूँ, उक्त अध्यापक महोदय ने माँ को पराजित करने अथवा उनकी परीक्षा लेने के लिए प्रश्न किया, "जो लोग श्रीकृष्ण-तत्त्व को उच्चतम तत्त्व कहते हैं, क्या वे भ्रान्त हैं?" शोभा माँ ने उत्तर दिया, "भ्रान्त क्यों होंगे? जिन्होंने जितनी दूर तक देखा है, उन्होंने उतनी ही दूर तक की बात कही है।"*

साधु का नाम सुनते ही एक श्रेणी के लोग कठिन रोग की दवा के लिए दौड़े आते हैं। इस प्रकार के भी बहुत-से लोग मेरे घर शोभा माँ के पास आए थे और

---

* विदेहमुक्त पुरुष, श्रीकृष्ण-तत्त्व और परब्रह्म-तत्त्व के परस्पर सम्बन्ध के विषय में श्रीयुत पं० गोपीनाथ कविराज के प्रश्न के उत्तर में शोभा माँ ने उन्हें इस प्रकार लिखा; "ब्रह्मज्ञान के बाद आगे की भूमि पार करने पर उसे विदेहमुक्त कहा जाता है। वस्तुतः विदेहमुक्त पुरुष के साथ श्रीकृष्ण का कोई पार्थक्य नहीं है; किन्तु एक अर्थ में वे महत्तर हैं। क्योंकि श्रीकृष्ण सत्त्वगुणात्मक हैं, किन्तु वे लोग अर्थात् विदेहमुक्त पुरुष त्रिगुणातीत हैं। किन्तु परब्रह्म के साथ विदेहमुक्त पुरुष का पार्थक्य यह है कि परब्रह्म सभी वस्तुओं अर्थात् सृष्टि-स्थिति-लय एक साथ देखते हैं; और वे अंश के बाद अंश देखते हैं। वे सृष्टि-स्थिति-लय को बायस्कीप के समान एक के बाद एक देखते हैं। ···· यह पार्थक्य परब्रह्म और विदेहमुक्त पुरुषों के बीच दिखाया है। वस्तुतः श्रीकृष्ण के साथ पार्थक्य नहीं है।"

साधारणत: एकान्त में भेंट करने का अनुरोध करके उसी प्रकार मिले भी थे। शोभा माँ ने इस विषय में किसी के किसी अनुरोध की रक्षा नहीं की थी। उन्होंने सबसे कहा था, "मैं किसी को दवा नहीं देती।" रोग दूर होगा या नहीं, ऐसे प्रश्न का भी वे कोई उत्तर नहीं देती थीं। दूसरे प्रकार के वैषयिक व्यापारों के भावी फलाफल के सम्बन्ध में भी उनका यही एक भाव देखा गया।

शोभा माँ ने किसी-किसी के पूर्वजन्म की बातें व्यक्त की हैं, यह सुनकर बहुतों ने उनसे सबके सामने या एकान्त में अपने-अपने पूर्वजन्म की बातें पूछीं। शोभा माँ ने कहा, "मैं जानती हूँ किन्तु बताऊँगी नहीं।" बताने पर उत्तर प्रीतिकर नहीं भी हो सकता है, मैं समझता हूँ, यह बात जिज्ञासुजनों के मन में नहीं आई थी। सम्भवत: सभी सोचते हैं कि मैं पूर्वजन्म में राजा या राजकुमार या ऐसा ही कोई महान् पुरुष था, किसी साधारण त्रुटि के कारण इस जन्म में कष्ट पा रहा हूँ। मैंने एक दिन परिहास के साथ कहा था, माँ यदि किसी को कह दें कि तुम पूर्वजन्म में बकरी थे, तो मैं समझता हूँ, कोई भी ऐसा प्रश्न लेकर फिर माँ को तङ्ग करने नहीं आएगा।

कलकत्ता हाईकोर्ट के एक एडवोकेट ने एक दिन अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त कहने के लिए माँ से बहुत हठ किया। माँ ने कहा, "मेरे कहने से ही क्या विश्वास होगा?" मालूम होता है कि इस कथन की सारवत्ता को उपलब्ध करके उस सज्जन ने कहा, "तो मेरे इस जन्म के किसी ऐसे कार्य की बात बताइए जिसे मेरे अत्यन्त आत्मीयजन के अतिरिक्त और कोई भी न जानता हो। ऐसा न कहने से आप पर मेरा विश्वास कैसे उत्पन्न होगा?" शोभा माँ ने कहा, "यदि विश्वास न हो तो हानि ही क्या है?" किन्तु एडवोकेट छोड़ने वाले पात्र नहीं थे; वे बार-बार जिद और हठ करने लगे। तब माँ ने उन्हें निर्जन कमरे में ले जाकर कुछ याद दिला दिया। उन सज्जन ने बाहर आकर किसी से कोई बात नहीं कही; कुछ देर मौन बैठकर फिर चले गए।

विश्वविद्यालय के पोस्ट-ग्रेजुएट कक्षा के अनेक छात्र माँ को देखने आए थे और प्रश्न, जिज्ञासा तथा तर्क भी किया था। बहुत बार इसे देख कर दु:ख हुआ कि हमारे लड़के बी० ए० पास करने पर भी संयत और सभ्य समाज के योग्य भाषा में तर्क करना नहीं जानते। अध्यापक डाक्टर महेन्द्रनाथ सरकार जब वहाँ रहते थे तो ऐसे अवसर पर बहुतों के प्रश्नों का संयत भाषा में अनुवाद कर देते थे और अपने स्वभाव-सिद्ध सौजन्य के साथ कुतर्ककारी को तर्क से निरस्त भी कर देते थे।

किसी-किसी के भाव को देखकर लगता था, मानो वे माँ का अपमान करने के उद्देश्य से ही आए हैं। कोई-कोई अपने मत का मेल न होने पर गरम भी हो जाते थे। किन्तु माँ को कभी क्षण भर के लिए भी चिढ़ते या गरम होते देखा नहीं गया। स्पष्टतः अपमान-सूचक प्रश्न के उत्तर भी वे हँसते हुए देती थीं। किसी प्रकार का अपमान उनके मन को स्पर्श किया है ऐसा अनुमान करने का कोई हेतु उनके आकार या वाक्य में कभी परिलक्षित नहीं हुआ।

दूसरी ओर उनके गुणों पर मुग्ध होने वाले व्यक्तियों की संख्या भी कम नहीं थी। इनमें बहुतेरे प्रायः प्रतिदिन उनके मुख से धर्म-कथा सुनने आते थे। सभी वर्णों और सभी अवस्थाओं के भव्य श्रोताओं में बहुतेरे उपदेश सुनने के बाद माँ के निषेध या अत्यन्त सङ्कोच पर भी चरण-स्पर्शपूर्वक प्रणाम करके जाते थे। थोड़ी देर के लिए भी पंखे आदि द्वारा उनकी किञ्चित् सेवा का अवसर पाने पर कितने लोग अपने को कृतार्थ समझते थे, कहा नहीं जा सकता। उनके ठाकुर जी और बाबा जी महाराज की सेवार्थ कितने ही लोग फल और मिठाइयाँ लाकर देते और प्रसाद पाकर अपने को कितना धन्य मानते थे, इसकी कोई सीमा नहीं है। आरती के समय ठाकुर जी आदि के घर में जो बहुत छोटा भी नहीं था, और उसके बाहर भी सज्जनों और सभ्य महिलाओं की भीड़ हो जाती थी।

कई साल पहले कालाज्वर होने के कारण शोभा माँ के मुँह पर फुन्सियों की तरह कुछ दाग उभर आये थे। कैम्पबेल अस्पताल के डाक्टर हेमेन्द्र बक्सी महोदय ने उनसे साक्षात् करने के बाद चर्मरोग के विशेषज्ञ डाक्टर द्वारा उसकी परीक्षा कराने की मुझे सलाह दी। पहले मैंने स्कूल आफ ट्रौपिकल मेडिसिन के डाक्टर गुणेन्द्रनाथ सेनगुप्त से अनुरोध किया और उन्होंने सौजन्य-पूर्वक आकर देखा तथा दागों को कालाज्वर का ही फल (Leishmaniases) बताया। उसके बाद मेरे मित्र डा० अमियभूषण सेन, एम० बी० स्कूल आफ ट्रौपिकल मेडिसिन के ही विशेषज्ञ डाक्टर कालीपद वन्द्योपाध्याय को अपने साथ लाकर शोभा माँ की परीक्षा कराई और उनकी सलाह के अनुसार कई इंजेक्शन दिए। इस पर वे सब उभरे दाग धीरे-धीरे गायब हो गए। इसी प्रकार और भी अनेक तरह से बहुतेरे गुणी और ज्ञानी लोगों ने उनके प्रति अनुराग और श्रद्धा दिखाई थी। प्रसिद्ध गायक और भक्त (अब परलोकवासी) श्रीयुत ब्रजेन्द्रकुमार गांगुली ने एक दिन अपने दल के साथ आकर कीर्तन किया था। एक अन्य दिन कलकत्ते के वैष्णव-समाज में सुपरिचित साधक, सुवक्ता और सुगायक श्रीमान् अजितकुमार भक्ति-वाचस्पति ने अपने दल के साथ

आकर पदावली-पाठ और कीर्तन द्वारा सबका आनन्द-वर्द्धन किया था। इसके पहले भी एक दिन आकर इन्होंने माँ के साथ कुछ देर तक तत्त्वालोचन भी किया था। रायबहादुर खगेन्द्रनाथ मित्र ने भी एक दिन माँ को अपने घर ले जाकर श्रीमान् नवद्वीपचन्द्र व्रजवासी की कई छात्राओं द्वारा कीर्तन कराकर माँ और हम सबको आनन्द प्रदान किया था। गायिकाओं में राय बहादुर की दो सुगायिका कन्याएँ भी थीं। इन्होंने एकाधिक दिन पिता के साथ मेरे घर आकर माँ को कीर्तन सुनाया था।

इसी समय कई एक भक्तों ने शोभा माँ से दीक्षा ग्रहण की और कई जनों ने नाम पाया। दीक्षा-प्राप्त व्यक्तियों में पूर्वोक्त श्रीमान् मोतीलाल दत्त और उनकी पत्नी, श्रीमान् जितेशचन्द्र चक्रवर्ती की माता तथा एक सम्भ्रान्त वंश की विधवा ब्राह्मण महिला उल्लेख्य हैं। इस महिला के पुत्र श्री श्री विशुद्धानन्द जी परमहंस देव के शिष्य हैं और इन्होंने स्वयं भी उनके निकट दीक्षा की प्रार्थना की थी। सर्वज्ञ परमहंस देव ने स्वयं दीक्षा न देकर कहा था, "जगदम्बा तुम्हें दीक्षा देंगी, व्यस्त होने की आवश्यकता नहीं है।"

शोभा माँ जब मेरे घर पर थीं, उसी समय उनकी शिष्या श्रीमती सुमति वन्द्योपाध्याय (उषा माँ की बहिन) शरीर पीड़ा से अत्यन्त पीड़ित होकर दवा कराने के लिये मैमनसिंह से कलकत्ता आईं और मेरे घर पर ही रहीं। वे उस बार आई० ए० की परीक्षार्थिनी थीं। कुछ दिनों में ही स्वस्थ होकर वे परीक्षा देने में समर्थ हुई थीं। परीक्षा के बाद शिशिर बाबू की सलाह से माँ के किसी शिष्य द्वारा प्रदत्त पैसे से ठाकुर जी के लिये, कुछ श्वेत प्रस्तर के बर्तन खरीदने के लिए एक दिन दोपहर में उषा माँ के साथ सुमति कालीघाट जाने के लिए तैयार हुई। इस विषय में उन्होंने पहले शोभा माँ से कुछ कहा नहीं, वरन् दोपहर के भोजन के बाद जब वे सो गईं तब उन्हें बिना बताए चुपचाप जाने का यत्न किया। वे घर के बाहर जाना ही चाहती थीं कि शोभा माँ ने जागकर कहा, मैं भी उनके साथ चलूँगी और चटपट तैयार होकर बाहर आ गईं। आश्चर्य की बात कि असमय होने पर भी इसी समय एक सज्जन शोभा माँ के दर्शन करने घर के दरवाजे पर आ पहुँचे। वे सज्जन मोटर से आए थे; यह सुनकर कि शोभा माँ कालीघाट जायँगी, उन्होंने कहा, "कृपा करके आप लोग मेरी गाड़ी से ही चलें; मैं काली जी का एक सेवक हूँ, आज मेरी ही बारी है।" उस सज्जन का नाम इस समय स्मरण नहीं है। उनके आदर-भाव पर शोभा माँ आदि उन्हीं की गाड़ी से गईं; उन्होंने भी इन लोगों को मन्दिर में ले जाकर मन्दिर खाली करके समादर के साथ काली जी का दर्शन कराया और उसके बाद

इन लोगों को अपने घर ले जाकर कुछ देर बातचीत करके पत्थर के बर्तनों की दुकान पर पहुँचा दिया। श्रीमती सुमति जब बर्तन देख रही थीं उसी समय शोभा माँ की दृष्टि उस दुकान की एक अलमारी में रखी एक जोड़ा श्वेत प्रस्तर-निर्मित राधा-कृष्ण की मूर्तियों पर पड़ी और दोनों मूर्तियाँ उन्हें बड़ी सुन्दर प्रतीत हुईं। दाम पूछने पर दुकानदार ने उनका दाम नब्बे या पञ्चानबे रुपए बताया। घर लौटकर माँ सबके सामने उन दोनों मूर्तियों के रूप की प्रशंसा करने लगीं। उनकी ऐसी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा सुनकर श्रीमान् (डाक्टर) सुरेशचन्द्र देव ने कहा, "मूर्ति खरीद लो, दाम के लिए चिन्ता न करो।" दूसरे दिन शोभा माँ ने सुरेश को मुझे और घर के कई लोगों को साथ लेकर दोनों मूर्तियाँ दिखाईं। सचमुच वे बड़ी सुन्दर थीं। इस बीच दुकान के मालिक ने भी शोभा माँ का कुछ परिचय पा लिया था। वह अस्सी रुपए में ही उन्हें माँ के हाथ बेचने को प्रस्तुत हो गया और बोला, "ले जाइए, रुपए बाद में दीजियेगा।"

सुरेश ने रुपए दे दिए। ये ही डाक्टर सुरेश देव श्रीयुत गोपीनाथ के साथ पहली बार बरकान्ता की यात्रा में सहयात्री हुए थे। शोभा माँ जितने दिन मेरे घर रहीं, वे प्रतिदिन दो बार आते और प्रसाद पाते थे। इसी प्रसङ्ग में कहा जा सकता है कि काली के पूर्वोक्त पूजक सज्जन एक दिन और आकर माँ को काली मन्दिर और अपने घर ले गए थे।

दोनों मूर्तियाँ आकर बाबा जी महाराज और ठाकुर जी के चित्रों के पास ही स्थापित हुईं और उनके साथ-ही-साथ इनकी भी भोग-आरती होने लगी। दोनों मूर्तियाँ जिसने भी देखीं मुग्ध हुए बिना न रहा। माँ के शिष्य श्रीमान् अमूल्यरतन घोष ने (ये बी० एन० रेलवे में नौकरी करते थे और कुछ दिनों पहले बरकान्ता जाकर सपरिवार माँ से दीक्षा ग्रहण की थी) दोनों विग्रहों के अलङ्कार बनाने के लिए ढाई सौ रुपए दिए। एक महिला ने ठाकुर के हाथ की चाँदी की बाँसुरी और एक दूसरी महिला ने चाँदी की छड़ी गढ़ा दी। और भी अनेकों ने पट्ट-वस्त्रादि नाना वस्तुएँ दीं। अन्त में बागबाजार की अन्नदा नियोगी लेन के मनमोहन घोष महाशय की पत्नी श्रीमती अन्नपूर्णा घोष और उनके गुणवान् पुत्रों ने बहुत धन व्यय करके अपने भवन में उक्त दोनों विग्रहों का अभिषेक और प्राण-प्रतिष्ठा आदि सम्पन्न कराई। उसके उपलक्ष्य में उन्होंने बहुत व्यक्तियों को निमन्त्रित करके प्रचुर भोजन द्वारा सबको तृप्त किया था। कीर्तन की भी व्यवस्था हुई थी। वर्षीयान् वैष्णव पण्डित रसिक मोहन विद्याभूषण महाशय ने भागवत-पाठ और सन्ध्या को भक्त-सम्मेलन का

श्री श्री ठाकुरजी, श्री जी
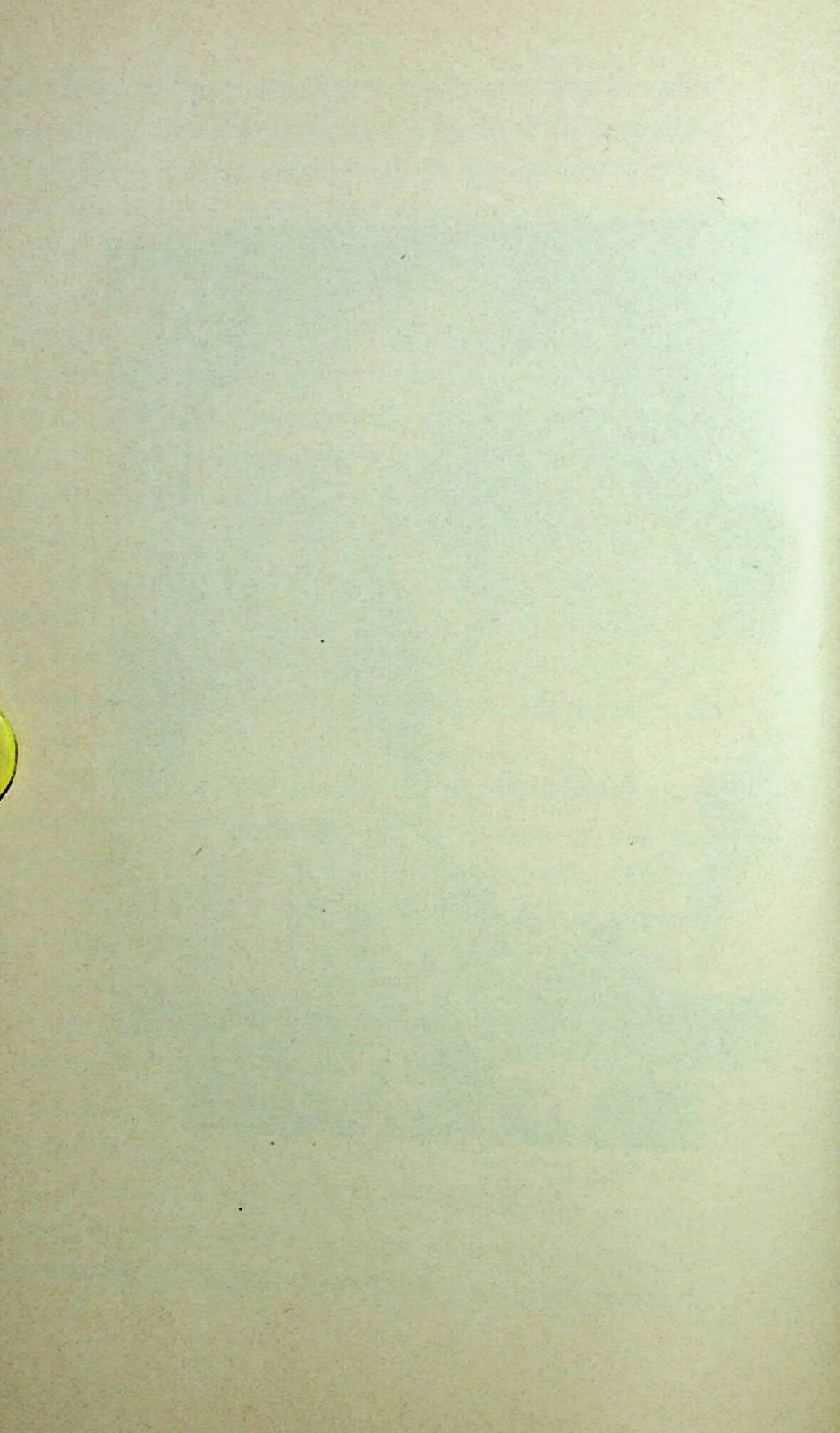
सभापतित्व भी किया। डाक्टर महेन्द्रनाथ सरकार, श्रीमान् मनीन्द्रकिशोर चक्रवर्ती आदि बहुत से कृतविद्य व्यक्तियों और श्री श्री सन्तदास बाबा जी के कई शिष्यों ने इस सभा में व्याख्यान दिए थे। उक्त बाबा जी महाराज का लोकोत्तर चरित्र ही वक्तव्य का विषय था। मनमोहन घोष महोदय हाईकोर्ट के वकील और बाबा जी महाराज के परम मित्र थे। उनकी पत्नी और पुत्रों में कोई-कोई बाबा जी महाराज के शिष्य हैं। शिवपुर में आश्रम बनने के पहले जब बाबा जी वृन्दावन से कलकत्ता आते थे तो प्राय: मनमोहन बाबू के घर पर ही रहते थे।

इस उत्सव की एक और घटना विशेष स्मरणीय और आनन्द-दायक थी; इसी दिन सबेरे श्री श्री आनन्दमयी माँ का कलकत्ता आगमन और पहले बिना किसी सूचना के स्टेशन से एकदम अन्नदा नियोगी लेन में गमन हुआ। इससे पहले शोभा माँ और शिशिर बाबू ने उत्सव के उपलक्ष्य में आनन्दमयी माँ को आने के लिए सविनय आमन्त्रित किया था; किन्तु उनका कहीं आना-जाना पहले से निश्चित नहीं रहता इसीलिए वे आने का वचन नहीं दे सकी थीं। अत: उनका आना एक प्रकार से अप्रत्याशित ही था। इन दोनों माताओं की इससे पहले कभी भेंट नहीं हुई थी। आनन्दमयी माँ इससे कुछ समय पहले से किसी गृहस्थ के घर में नहीं जाती थीं। उन्होंने गली में खड़े-खड़े दोनों मूर्तियों का दर्शन किया। उन्हें यहाँ अप्रत्याशित रूप में पाकर भक्तों ने उन्हें रास्ते में ही घेर लिया और कुछ देर तक कीर्तन का आनन्द उठाया। इस बार बालीगंज में स्थित बिड़ला के शिव-मन्दिर में आनन्दमयी माँ का वास-स्थान निश्चित हुआ था। वे बागबाजार से शोभा माँ को गाड़ी में लेकर वहाँ गईं और वहीं इनके साथ कुछ बातचीत की। इस बातचीत के समय आनन्दमयी माँ के कई भक्त वहाँ उपस्थित थे। उन भक्तों में से कोई आध्यात्मिक विषय पर माँ से प्रश्न करने पर माँ स्वयं उत्तर न देकर शोभा माँ को उत्तर देने के लिए कहीं। दोनों माताओं का यह प्रीति-सम्मेलन सभी उपस्थित जनों के लिये अत्यन्त आनन्ददायक था। आनन्दमयी माँ ने इसी दिन तीसरे पहर कलकत्ता से प्रस्थान किया। उनके कतिपय भक्तों (पुरुषों और महिलाओं) ने उन्हें हावड़ा स्टेशन पर ट्रेन में चढ़ा दिया और उन्हीं के आदेश से बागबाजार आकर नव-स्थापित मूर्तियों का प्रसाद पाया था। आनन्दमयी माँ की जननी भी उन सबके साथ थीं।

२६ फरवरी, १९३९ को (बँगला १३४५ साल के १४ वें फागुन) को यह उत्सव हुआ। उसके उपलक्ष्य में २४ फरवरी (१२ वें फागुन) को शोभा माँ अपने लोगों के साथ मेरे घर से बागबाजार गईं। उत्सव के बाद माँ कई दिनों तक उस घर

में रहीं। उस समय इस अञ्चल के बहुत-से स्त्री-पुरुषों ने उनके दर्शन और उपदेशादि सुनने का सौभाग्य प्राप्त किया। इस घर से माँ अपनी जननी आदि एवं विग्रह आदि के साथ पटलडाँगा के मुसलमान पाड़ा लेन में अपने मामा के घर चली गईं। वहाँ भी बहुतों ने जाकर उनसे भेंट और तत्त्वालाप किया था। इसी घर में उनके युगल-विग्रह का दोलोत्सव हुआ। इसके बाद ही वे इस स्थान से बरकान्ता चली गईं। इस बार वे फिर लौटकर मेरे घर नहीं आईं। उनके नाना कुछ दिनों पहले से ही बीमार थे। उनकी और उनके पुत्र-पुत्रियों की इच्छा पर ही वे उनके घर जाकर रहने लगीं। उन्हें कुछ थोड़ा स्वस्थ करने के बाद माँ बरकान्ता लौट गईं। शोभा माँ के एक मामा भी एम० बी० डाक्टर थे। रोग के कठिन होने पर भी बहुतों ने सोचा था कि इस बार माँ के नाना महाशय टिक गए हैं। किन्तु माँ ने अपनी माता के अनजाने में बहुत पहले ही हम लोगों से कह दिया था कि नाना जी इस बार बच नहीं सकेंगे। वही हुआ। माँ के बरकान्ता लौटने के कुछ दिनों बाद ही उनका परलोक-वास हो गया। माँ ने कहा था, उनकी उच्च गति हुई है।

माँ के कलकत्ते से चले जाने पर हम लोगों और उनके अनेक भक्तों ने अपने को नितान्त निःसङ्ग और निरानन्द अनुभव किया था। राय बहादुर रेवतीमोहन दास, एम० ए०, अवकाश-प्राप्त जज प्राणकुमार बसु, डाक्टर सुरेशचन्द्र देव, बाबू अश्विनीकुमार बागची, अध्यापक नृपेशचन्द्र गुहा, बाबू ज्ञानचन्द्र ब्रह्मचारी, बाबू नवतरु हालदार, बाबू निवारण चन्द्र घोष, बाबू मणीन्द्र किशोर चक्रवर्ती आदि जो सरल धर्मप्राण व्यक्ति प्रतिदिन (किसी-किसी दिन दो बार) माँ को देखने आते थे, उन्होंने उनके अभाव का अत्यधिक अनुभव किया था।

माँ की कृपा की तरह उनका सौजन्य भी असीम है। बरकान्ता पहुँचकर उन्होंने मुझे, मेरी स्त्री को, और मेरे पुत्रों को अलग-अलग पत्र दिए थे। पूर्वोक्त भक्तों में भी किसी-किसी के पास उन्होंने पत्र दिए थे। माँ के विरह में सुकुमार बाबू अत्यन्त क्षुण्ण मन से दिन बिता रहे थे और माँ को छोड़ देने के लिए मेरे पास बार-बार पत्र लिखते रहे। माँ को पाकर मानों उन्हें पुनर्जीवन मिल गया। उन्होंने भी मुझे अत्यन्त सौजन्यपूर्ण एक पत्र लिखा था। वस्तुतः माँ जिस प्रकार स्वयं कृपा करके मेरे घर आईं थीं, उसी प्रकार अपने गुणों से ही उन्होंने अपने को हमारा अत्यन्त आत्मीय बना डाला था।

***

बारह

माँ के काशी जाने के पहले मेरे घर पर तत्त्व-जिज्ञासु व्यक्तियों ने उनके साथ जो विचार-विमर्श किया था, उसका संक्षिप्त विवरण सुकुमार बाबू ने एक कापी पर लिख रखा था। निम्नलिखित प्रश्नोत्तरों को उसी से नकल करके उन्होंने मेरे पास भेज दिया था। ५ जनवरी, (१९३९) को सबेरे प्रश्नकर्त्ता 'आशुतोष कालेज' के अस्थायी अध्यापक श्रीमान् मणीन्द्र किशोर चक्रवर्ती ने कुछ निर्जन में माँ के साथ बातचीत के सुयोग पर ये प्रश्न माँ से किए थे। इस समय सुकुमार बाबू वहाँ उपस्थित थे।

प्रश्न—क्या आपने भगवान् को देखा है?

उत्तर—अवश्य देखा है।

प्रश्न—भगवान् के साथ आपका क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—अभेद सम्बन्ध।

प्रश्न—जगत् के साथ आपका क्या सम्बन्ध है?

उत्तर—भगवान् के साथ जगत् का जो सम्बन्ध है, मेरे साथ भी जगत का वही सम्बन्ध है।

इसी दिन तीसरे पहर मणीन्द्र बाबू ने माँ से और भी कई एक प्रश्न किए थे। इस समय सुकुमार बाबू के अतिरिक्त डा० महेन्द्रनाथ सरकार भी उपस्थित थे।

प्रश्न—Evolution theory आप मानती हैं क्या?

उत्तर—क्या आप विज्ञान के क्रमविकासवाद के बारे में पूछ रहे हैं? वह सत्य नहीं है। हमारे शास्त्र-मत में परब्रह्म से सृष्टि का विकास हुआ। जैसे परब्रह्म से कार्यब्रह्म, कार्यब्रह्म से गोलोक, इस भाव से क्रमशः सृष्टि का विकास हुआ है। यह एक साथ ही हुआ है।

प्रश्न—भगवान् ने यह सृष्टि क्यों की?

उत्तर—भगवान् ने सृष्टि नहीं की। वे स्वयं ही सृष्ट हुए, (अर्थात्) "बहु" हुये।

प्रश्न—क्यों?

उत्तर—यह उनका खेल है। जैसे एक शिशु के खेलने के लिए तरह-तरह के खिलौनों की आवश्यकता होती है, वैसे ही भगवान् को भी खेलने के लिए इन सबकी आवश्यकता होती है।

काशी से लौटने और सुकुमार बाबू के बरकान्ता जाने पर दर्शकों के साथ माँ की बातचीत के कोई विवरण लिख रखने की किसी तरह की चेष्टा मेरे जानने में

नहीं हुई थी। उस समय तक मैंने सरकारी नौकरी से अवकाश-ग्रहण नहीं किया था, इसके अतिरिक्त भोग-रागादि की व्यवस्था के लिए भी मुझे व्यस्त रहना पड़ता था। इसीलिए और लोगों के साथ उनकी बातचीत के समय मैं उनके पास अधिक काल तक रह नहीं पाता था। तब भी बीच-बीच में औरों के साथ बातचीत के समय शोभा माँ द्वारा व्याख्यात जो दो-एक तत्त्व मुझे सुनने को मिले थे और जिस पर माँ के साथ बहुतों को तर्क करते सुना था, स्मृति से वैसे ही कई एक तत्त्व नीचे लिख रहा हूँ। एकान्त में स्वयं मेरे उनसे पूछने पर जो कई-एक बातें सुनी थीं, उन्हें तत्क्षण मैंने एक कापी पर लिख लिया था। उसका कुछ अंश अगले परिच्छेद में उद्धृत किया जायगा।

१—पूर्णब्रह्म इस अनन्त विश्व के प्रत्येक जीव में और प्रत्येक पदार्थ में, यहाँ तक कि प्रति अणु-परमाणु-तक में हैं। इसे छोड़कर इसके बाहर भी हैं। जगत् के भले-बुरे सब में ही वे हैं और भले-बुरे सब उन्हीं में हैं। उनके अतिरिक्त कुछ नहीं है, किसी को छोड़कर भी वे नहीं हैं; तिसपर भी उनमें ही वे पर्यवसित या परिसमाप्त नहीं हैं।

२—पूर्णब्रह्म सगुण भी हैं और निर्गुण भी; वे एक साथ ही (युगपत्) दोनों हैं। वे ही प्रकृति, वे ही पुरुष, वे ही अन्तर्यामी और ईश्वर तथा वे ही अक्षर ब्रह्म हैं।

(दार्शनिक परिभाषा में, समझता हूँ, इसे इस प्रकार कहा जायगा:—पूर्णब्रह्म गुणात्मक, गुण-भोक्ता, गुण-नियामक और गुण-रहित सब कुछ हैं; उपाधि-भेद से नाम और क्रिया का भेद होता है।)

३—इस विश्व जगत् की सृष्टि एक मुहूर्त्त ही में हुई है; नये तरह से और कुछ भी सृष्ट नहीं हो रहा है। पूर्वसृष्ट वस्तु का ही "काल" में मात्र प्रकाश हो रहा है। जिसे हम समझते हैं कि भविष्य में होगा, वस्तुतः वह सब ही पहले हो चुका है। जिस प्रकार छायाचित्र के चित्र पहले से ही प्रस्तुत रहते हैं, बाद में प्रदर्शन के समय एक-के बाद-एक प्रकाश पाते हैं, ये भी बहुत कुछ वैसे ही हैं।

४—मनुष्य के भूत, भविष्य और वर्तमान—सब पहले से ही निर्दिष्ट हैं। मनुष्य की चेष्टा या चेष्टा के अभाव द्वारा पूर्व निर्दिष्ट भवितव्य का ही विकाश होता है। गुरु कौन पाएगा या नहीं पाएगा और पाने से किस जन्म में किसे पाएगा, यह भी निर्दिष्ट है।

५—जगत् में नित्यमुक्त जीव जिस प्रकार हैं, उसी प्रकार नित्यबद्ध जीव भी हैं। नित्यबद्ध जीवों को वर्तमान कल्प में किसी जन्म में भी मुक्ति नहीं है। हाँ,

कल्पान्तर में मुक्ति हो सकती है। औरों को इस जन्म में या बाद के किसी जन्म में मुक्ति मिलेगी। सद्गुरु की कृपा प्राप्त होने पर तीन जन्मों के भीतर ही अवश्य मोक्ष हो जायगा।

६—मोक्ष के लिए सद्गुरु की कृपा एकान्त आवश्यक है। सद्गुरु के अभाव में अपनी ऐकान्तिक चेष्टा द्वारा अथवा अन्यविध गुरु के उपदेश से बहुत आगे बढ़ जाना असम्भव नहीं है; किन्तु अन्त तक पहुँचना सम्भव नहीं है।

७—सारी पृथ्वी में सद्गुरु केवल आठ ही हैं। इससे अधिक कभी नहीं रहते।*

८—प्राणी-हत्या पाप है और उसका फल भी अवश्य भोगना पड़ता है, जैसे अन्य सब कर्मों का फल अवश्य भोग्य है। दंश, मच्छर इत्यादि मारने पर भी पाप अवश्य ही होता है; किन्तु उसके लिए जो भोग है वह उतना कष्टकर नहीं होता। बस केवल शिर: पीड़ा या ऐसे ही सामान्य कष्ट द्वारा इसी श्रेणी के कितने ही पापों का भोग क्षय होता है।

(इस प्रसङ्ग को लेकर बहुतों ने माँ के साथ बहुत-से कुतर्क किए। उनका कहना यह था कि प्राणिहत्या यदि पाप है, तो नर-हत्या से जितना पाप होता है, उतना ही पाप मच्छड़-मक्खी मारने पर भी होना चाहिए।)

संसार में रहकर किस प्रकार भगवान् की सेवा की जानी चाहिए, इस प्रश्न के उत्तर में माँ ने कहा:— स्त्री, पुत्र, कन्या, आत्मीय जन और स्वामी, श्वशुर आदि की सेवा भगवद् बुद्धि से करनी चाहिए।

प्रश्न—भगवद्बुद्धि कहने से क्या समझेंगे?

उत्तर—प्रत्येक के अन्दर ही भगवान् हैं और वे ही स्त्री, पुत्र इत्यादि के रूप में हमारी सेवा ग्रहण करते हैं—ऐसी बुद्धि।

शेष कहे गए उपदेश माँ बहुतों को देती हैं; किन्तु मैंने उन्हें पाया है श्रीमान् सुकुमार बाबू की डायरी में; इन्हें मैंने अपने घर पर स्वयं सुना नहीं है। निम्नलिखित उपदेश भी सुकुमार बाबू ने ही मुझे लिखकर बताया है। दोनों उपदेशों को अत्यन्त व्यवहारोपयोगी (Practical) समझकर मैंने इस परिच्छेद में दे दिया है।

---

* यह संख्या आठ नहीं है नौ है। महापुरुषों की लोकोत्तर विनय के कारण कहते समय अपने को इनमें गिनती नहीं करते। इसी से संख्या नौ की जगह आठ कही जाती है। श्री श्री माँ के मुख से हमने एकाधिक बार इस तथ्य को कहते हुये सुना है और इसीलिये यहाँ पर इस टिप्पणी की आवश्यकता अनुभव की जाती है।

प्रश्नकर्त्ता थे, कुमिल्ला के कोर्ट-आफ-वार्ड्स के जनरल मैनेजर श्रीयुत बी० एन० भट्टाचार्य।

प्रश्न—सारे दिन दफ्तर का काम करने के बाद सायङ्काल जब जप करने बैठता हूँ, तब मन में यही आता है कि किस नायब ने क्या गलती की, किस स्टेट का रेवन्यू ड्यू हुआ (सदर खजाना देने का समय हुआ), किस तहसीलदार को क्या समझाना बाकी रह गया—इत्यादि। इन सब चिन्ताओं को मन से दूर करने का क्या उपाय है, बताओ।

उत्तर—ऐसा ही साधारणतः होता है। थोड़ा सा शान्त मन को पाकर ही संसार की सारी चिन्ताएँ आकर दबोच लेना चाहती हैं। तब भगवान् से प्रार्थना करनी पड़ती है कि, हे भगवान्! तुम मेरे पास इन सब चिन्ता-रूपों में न आकर मेरे इष्ट रूप में दर्शन दो।

असम्बद्ध अनेक प्रश्नों के उत्तर में किसी का विशेष उपकार या मान नहीं होता है, इसे सोचकर महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने ऐसी परिकल्पना की थी कि, एक-एक प्रसङ्ग में जितने प्रकार के प्रश्न हो सकते हों, उन्हें पहले लिखकर वे स्वयं या किसी दूसरे के द्वारा क्रम-बद्ध-रूप में माँ से पूछेंगे और माँ के साथ भी ऐसा ही निश्चित किया गया था वे इस रूप में उत्तर देंगी जो तुरन्त ही लिखा जा सके। इस परिकल्पना के अनुसार काशी में केवल दो दिन (सन् ई० १९३९ की १ ली और २ री जनवरी को कार्य हुआ था। ये प्रश्नोत्तर मूल्यवान् समझ कर यहाँ समग्र भाव से दिये जा रहे हैं—

प्रथम दिन

प्रश्न— दीक्षा कितने प्रकार की हैं?

उत्तर— तत्त्वतः दीक्षा एक ही प्रकार की है। शिष्य के अधिकारानुसार मन्त्र का तारतम्य होता है।

प्रश्न— शास्त्र में नाना प्रकार की दीक्षा की बातें हैं, उन सब विभिन्न दीक्षा-प्रणालियों का मूल तत्त्व क्या है?

उत्तर— मन्त्र द्वारा गुरु शिष्य की कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करते हैं, इस मन्त्रदान-रूप कार्य को ही दीक्षा कहते हैं।

प्रश्न— साधना के क्रम-विकास में एक देवता से अन्य देवता की उपलब्धि सम्भव है या नहीं? यदि सम्भव है तो साधक की यह उर्ध्व गति स्वभावतः ही निष्पन्न हो जाती है या पुनः दीक्षा की आवश्यकता होती है?

उत्तर— सद्गुरु-प्रदत्त मंत्र द्वारा वह सम्भव है। सद्गुरु के द्वारा पहले अल्पशक्ति-युक्त मन्त्र दिये जाने पर भी उसी मन्त्र में साधक के सम्पूर्ण सिद्ध हो जाने पर परवर्त्ती उच्चशक्ति-सम्पन्न मन्त्र स्वतः ही भीतर में जाग्रत होता है; क्योंकि पूर्ण गुरु-शक्ति पीछे रहकर कार्य करती है। जीवनी-शक्ति के प्रभाव से ही जिस प्रकार बाल्य, कैशोर और वार्द्धक्य स्वतः प्रकाशित होते हैं, वैसे ही गुरु-शक्ति के पीछे रहने पर चरम अवस्था में ब्रह्मज्ञान स्वभावतः ही हो जाता है।

प्रश्न— मन्त्र विशेष का साधक देहान्त में मन्त्र-प्रतिपाद्य देवता के लोक में जाकर किस क्रमानुसार सालोक्य से उसी देवता के साथ सायुज्य या ऐक्य प्राप्त कर लेता है?

उत्तर— पहले साधक सालोक्य, फिर सारूप्य, उसके बाद सायुज्य लाभ करेगा। यदि साधक सद्गुरु प्रदत्त मन्त्र न पाकर उस लोक में जाता है तो लोकाधिपति के समान नहीं हो सकता, अर्थात् सायुज्य लाभ नहीं होगा। जो साधक सद्गुरु-प्रदत्त मन्त्र के प्रभाव से सायुज्य तक प्राप्त करेगा, वह उसके बाद स्वतः परवर्त्ती ऊर्ध्वतर लोक में चला जायगा।

प्रश्न— सायुज्य लाभ करने पर साधक की पृथक् सत्ता रहती है या नहीं? यदि रहती है तो इस अवस्था को सायुज्य कहना उचित है या नहीं? यदि नहीं रहती तो इस प्रकार सायुज्य-प्राप्त व्यक्ति की ऊर्ध्वगति की सम्भावना कहाँ रही?

उत्तर— यदि सद्गुरु-प्रदत्त मन्त्र के बल से साधक उक्त देवता के लोक में प्रवेश करता है और क्रमशः अग्रसर होता रहता है तो चरम अवस्था में उक्त देवता के साथ ऐक्य प्राप्त करके उन्हें अतिक्रमण करता हुआ चला जाता है। किन्तु यदि सद्गुरु-प्रदत्त मन्त्र की सहायता न रहे तो उक्त-प्रकार सायुज्य हो ही नहीं सकता; क्योंकि साधक चाहे जितनी उच्च अवस्था क्यों न प्राप्त कर ले, उसे इष्ट देवता से न्यूनशक्ति विशिष्ट रहना ही होगा। इस लिये सायुज्य अवस्था में स्थिति देवता में ही हो नहीं सकती। एकमात्र पूर्णब्रह्म में ही यह सम्भव है।

प्रश्न— बीज, मंत्र और नाम का परस्पर भेद क्या है?

उत्तर— नाम और बीज में भेद नहीं है, किन्तु शक्ति का पार्थक्य है।

प्रश्न— केवल नाम के सहारे दीक्षा दी जा सकती है या नहीं?

उत्तर— केवल नाम से सद्‌गुरु दीक्षा नहीं देते।

प्रश्न— सद्‌गुरु किसे कहते हैं?

उत्तर— जो अन्ततः ध्यान द्वारा कार्यब्रह्म को जानते हैं, वे ही सद्‌गुरु हैं।

प्रश्न— सद्‌गुरु न होकर यदि कोई मन्त्र-प्रदान करे तो वह कहाँ तक फलदायक होगा?

उत्तर— तृतीय भूमि तक।

प्रश्न— सद्‌गुरु की शक्ति के बिना केवल मन्त्रशक्ति साधक के साधन प्रभाव से कार्यकारी हो सकती है या नहीं?

उत्तर— कुछ हद तक हो सकती है, किन्तु पूर्णता लाभ नहीं होगी।

प्रश्न— सद्‌गुरु की कृपा एकमात्र दीक्षा-व्यापार में ही समाप्त हो जाती है अथवा उसके आगे भी अधिकारानुसार क्रमशः प्रकाश होती है?

उत्तर— दीक्षा के साथ-ही-साथ सद्‌गुरु पूर्ण कृपा ही करते हैं। शिष्य अपने अधिकारानुसार शीघ्र या विलम्ब से उसे अनुभव करते हैं।

प्रश्न— शिष्य का कर्म-क्षय किन-किन उपायों से होता है?

उत्तर— गुरु-कृपा ही से साधना या फलभोग को आश्रय करके शिष्य का कर्म-क्षय होता है। गुरु-कृपा से शिष्य के प्रारब्ध-व्यतिरिक्त अन्य कर्मों का क्षय होता है और कर्म-क्षय के फल-स्वरूप ज्ञान का विकास होता है। ज्ञान-प्राप्ति होने पर ही सत्य वस्तु का प्रकाश होता है। प्रारब्ध कर्म के क्षय होने पर शरीर नहीं रहता। "प्रारब्ध" अर्थात् कारण-देह का संस्कार। इस संस्कार के नष्ट होने पर देह रह नहीं सकती। किन्तु इस संस्कार के रहने पर भी सत्य-दर्शन में कोई बाधा नहीं होती। तब वे मुक्त पुरुष कर्म के अधीन नहीं रहते, बल्कि कर्म ही इनके अधीन हो जाता है।

प्रश्न— सद्‌गुरु की शक्ति कितने समय में शिष्य के समस्त कर्मों को क्षय करके उसे परमपद पर प्रतिष्ठित कर सकती है?

उत्तर— तीन जन्मों के भीतर (निम्नतम अधिकारी के लिए)।

द्वितीय दिन

प्रश्न— सद्‌गुरु को पहचानने का क्या उपाय है?

उत्तर— कोई उपाय नहीं है। श्रीभगवान् पर निर्भर होकर रहना पड़ता है। सद्‌गुरु की प्राप्ति सुकृति पर निर्भर है।

प्रश्न— सद्गुरु से दीक्षा लेने के बाद ऐसा हो सकता है कि दीर्घकाल तक किसी प्रकार का अनुभव न हो? यदि ऐसा हो, तो उसका कारण क्या है? ऐसी अवस्था में वह यदि दूसरा गुरु कर ले तो गुरु-त्याग जनित दोष होता है या नहीं?

उत्तर— हाँ, हो सकता है। खेत तैयार न रहने पर बीज के अंकुरित होने में जिस प्रकार देर होती है, उसी प्रकार यहाँ भी। नहीं; सद्गुरु प्राप्त होने पर उसका त्याग कभी नहीं होता।

प्रश्न— किसी-किसी गुरु के दीक्षा देने के साथ-ही-साथ शिष्य को नानारूप दर्शन और अनुभूति हो जाती है। किन्तु बहुत समय देखा जाता है कि जिन्हें हम खूब उच्च समझते हैं, उनके शिष्यों को विशेष कोई दर्शन या अनुभूति नहीं होती। इसका कारण क्या है?

उत्तर— सद्गुरु शिष्य की योग्यता और अधिकार का विचार करके ही तदनुरूप शक्ति-सम्पन्न बीज या दीक्षा प्रदान करते हैं। किन्तु जो सद्गुरु नहीं हैं, उनके द्वारा शिष्य की सामर्थ्य के अनुरूप बीज-दान नहीं करने पर शिष्य के चित्त और देह में नानाप्रकार के विकार उपस्थित होते हैं। जो सब दर्शन और अनुभूति की बात कही गई है, वह सब इस विकार से भिन्न और कुछ नहीं है; वह स्थायी नहीं हो सकता और तज्जनित आनन्द भी स्थायी नहीं होता।

प्रश्न— क्या सद्गुरु से दीक्षा पाए बिना भी नानारुप-दर्शन और अनुभूति हो सकती है?

उत्तर— हाँ, हो सकती है।

प्रश्न— यदि होती है तो क्या उसके द्वारा यथार्थ आध्यात्मिक उन्नति होती है?

उत्तर— नहीं।

प्रश्न— वे सब दर्शनादि चलने के मार्ग में सहायक होते हैं या नहीं?

उत्तर— नहीं।

प्रश्न— सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त होने पर भी यदि दीर्घकाल तक किसी प्रकार का दर्शन या अनुभूति लाभ न हो तो उस अवस्था को उन्नति कहेंगे या अवनति?

उत्तर— वह स्थिति भी हो सकती है, फिर अवस्था विशेष में उसे उन्नति भी कह सकते हैं, यह सब साधक की अवस्था के अनुयायी होता है। सद्गुरु की

कृपा प्राप्त होने पर साधक के जीवन में अवनति कभी हो ही नहीं सकती।

प्रश्न— दीक्षा प्राप्त होने पर कहीं-कहीं देखा जाता है कि ऐसी कितनी ही वृत्तियाँ प्रबल हो उठती हैं जो पहले कभी नहीं थी; इसका कारण क्या है? स्थूल दृष्टि से इससे अधःपतन ही मालूम पड़ता है।

उत्तर— भोग हो जाता है। यह अधःपतन नहीं हो सकता।

प्रश्न— विश्वास का मूल क्या है? कब और किस उपाय से विश्वास स्थायी होता है?

उत्तर— गुरू-कृपा से। भगवत्-कृपा से ही होता है।

उक्त प्रश्नोत्तरों के साथ काशी में अन्य एक जिज्ञासु (श्रीयुत हरिचरण घोष महाशय) के कई प्रश्नों के निम्नलिखित उत्तर मुझे मिले हैं। सात जनवरी (१९३९) को ये उत्तर दिए गए।

गुरु मन्त्र देने के साथ-ही-साथ कुण्डलिनी शक्ति जागरित होगी। हो सकता है, साधक उसे समझ न पाए।

सद्गुरु सभी (मूलतः) एक हैं। एक सद्गुरु अन्य सद्गुरु के देहान्त पर उनके शिष्यों के भोग स्थूल देह में भोगते हैं। यहाँ कोई साम्प्रदायिकता नहीं है।

गायत्री मन्त्र से दीक्षा के बाद भी अन्य मन्त्र से दीक्षा की आवश्यकता रहती है। गायत्री मन्त्र देवी लोक़ तक ले जा सकता है; उसके आगे नहीं।

प्रणव के बिना मन्त्र पूर्ण नहीं होता। प्रणव के भीतर सब कुछ ही रहता है। अतः प्रणव-युक्त मन्त्र में पृथक् से बीज नहीं भी रह सकता है।

तेरह

साधक-गणों की भूमि के सम्बन्ध में अनेक बातें पहले शिशिर बाबू की डायरी से उद्धृत की गई हैं। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज की शोभा माँ के साथ भेंट के बाद उनके निकट भी भूमि के सम्बन्ध में माता जी के मत से थोड़ा बहुत मुझे जानने में आया था। उसमें भी विषय के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट धारणा नहीं हुई थी। इसीलिए एक दिन शोभा माँ को एकान्त में पाकर इस विषय पर मैंने प्रश्न किया। उसके उत्तर में उन्होंने ज़ो कहा वह इस प्रकार है:—

भूमियों में सब की अवस्था एक-सी नहीं होती, इसे ध्यान में रखना होगा। पहले जिनके गुरु अर्थात् सद्‌गुरु हैं उनकी अवस्था कही जा रही है।

प्रथम भूमि पर साधक का गुरु के प्रति विश्वास दृढ़ होता है। समाधि सब की नहीं होती।

भक्तिमार्ग पर चलने में द्वितीय भूमि पर जाकर समाधि होती है; किन्तु वह जड़-समाधि होती है; उसमें आनन्द-बोध नहीं रहता, एक शुष्क कठिन भाव मात्र रहता है। इस भूमि में गुरु के स्वरूप का अनुभव किया जाता है। तब यह बोध उत्पन्न होता है कि, गुरु ही सर्वस्व हैं। जो लोग ज्ञानमार्ग पर जाते हैं, उनका इस भूमि पर विचार ही चलता रहता है, किन्तु वे भी गुरु की कृपा उपलब्ध करते हैं।

भक्तिमार्ग में साधक तृतीय भूमि पर इष्टदेवता को समझ पाते हैं तथा मन्त्र और देवता का ऐक्य उपलब्ध करते हैं। किन्तु इष्ट-देवता और गुरु के ऐक्य की उपलब्धि तब भी नहीं होती। ज्ञान-मार्गियों का इस भूमि पर भी विचार ही चलता रहता है और उसके साथ ही उन्हें आनन्द की भी कुछ-कुछ उपलब्धि होने लगती है।

चतुर्थ भूमि में भक्तिमार्गियों की निर्विकल्प समाधि होती है। तब सभी आनन्दमय बोध होता है। इष्टदेवता, गुरु और हम—इनमें पृथक्त्व का बोध नहीं होता; सब मिलकर एक हो जाते हैं। यही अद्वैत अवस्था है, इसमें द्वैत-बोध तनिक भी नहीं रहता। सद्‌गुरु की कृपा के बिना, यह अवस्था प्राप्त नहीं की जा सकती। इस भूमि में ज्ञानमार्गियों की भी निर्विकल्प समाधि होती है। साधारणतः उनकी सविकल्प समाधि नहीं होती। हाँ, यह स्मरण रखना कि शुद्ध ज्ञानमार्गी साधक बहुत विरल होते हैं।

पञ्चम भूमि के प्रथम भाग में साधक सब के भीतर ही अपने को और

इष्टदेवता को देखते हैं और अपने भीतर भी सब-कुछ देखते हैं। इस भूमि पर पुनः द्वैत आ जाता है और इष्टदेवता को उनकी पूर्व मूर्ति अर्थात् इष्टमूर्ति में देखते हैं। किन्तु इष्टदेवता और मैं—इनमें द्वैतबोध नहीं रहता। इस भूमि के बीच्रोबीच पूर्णब्रह्मज्ञान हो जाता है। तब उनमें सब कुछ है और सब कुछ में वे हैं, यह बोध भी रहता है तथा तदतिरिक्त भाव में भी वे हैं, यह बोध भी साथ-ही-साथ (युगपत्) होता है। भक्तिमार्ग में यही अन्तिम भूमि कही जा सकती है। इसके पश्चात् ब्रह्मरूपता हो जाती है। ज्ञानमार्गी लोग पञ्चम भूमि पर सर्वभूत में ब्रह्म-दर्शन करते हैं। ब्रह्म सर्वभूत में है और इसके अतिरिक्त भाव में भी है, यह बोध उन्हें षष्ठभूमि में होता है। षष्ठभूमि में वे पूर्णब्रह्मज्ञ हो जाते हैं। सप्तमभूमि में उनकी ब्रह्मरूपता होती है।*

साधना चतुर्थ भूमि तक रहती है। निर्विकल्प समाधि के बाद साधना फिर नहीं रहती। ज्ञानमार्गी हो या भक्तिमार्गी—सबके लिए जगत् ध्यानगम्य हो जाता है। पञ्चमभूमि के बीचोबीच ब्रह्मज्ञता आने पर सामान्य और विशेष सभी ज्ञान प्राप्त हो जाते हैं।

जिनको गुरु अर्थात् सद्गुरु नहीं मिला है (सद्गुरु यदि न हो तो गुरु पाना और न पाना बराबर है) उनको विषयों के प्रति तीव्र वैराग्य और भगवान् के प्रति थोड़ा सा आकर्षण होने पर ही प्रथमभूमि मिलती है। द्वितीयभूमि पर उनका अनुराग भगवान के प्रति अति प्रबल हो जाता है। तृतीयभूमि पर वे मूर्तिविशेष में भगवान को प्रत्यक्ष करते हैं। कोई-कोई प्रथमभूमि पर भी भगवद् दर्शन लाभ करते हैं। किन्तु वह दर्शन छायादर्शन होता है।

लोक अर्थात् भुवन के सम्बन्ध में शोभा माँ ने मुझे यह उपदेश दिया—

भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, और सत्य इन सप्त लोक के आगे क्रमशः ऊर्ध्व, ऊर्ध्वतर के हिसाब से निम्नलिखित ये सब लोक हैं—

१. देवी लोक [अधिष्ठात्री काली]

---

*श्रीयुत गोपीनाथ के प्रश्न के उत्तर में एक पत्र में शोभा माँ ने ब्रह्मरुपता के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा था—"स्थूल, सूक्ष्म, कारण यह सब तत्त्व जब ब्रह्माकार हो जाते हैं, तब ही इसे ब्रह्मरुपत्व कहते हैं।" पुनश्च "ब्रह्मज्ञान होने पर जीव के स्थूल के सम्पूर्ण और सूक्ष्म के कुछ तत्त्व ब्रह्माकार हो जाते हैं, किन्तु सूक्ष्म के कुछ और कारण-देह के सम्पूर्ण तब भी ब्रह्माकार नहीं होते। इसीलिये षष्ठ भूमि में ब्रह्मरूपता प्राप्त करने से स्थूल-सूक्ष्म-कारणतत्त्व सभी ब्रह्माकार हो जाते हैं।"

२. निम्नस्थ ब्रह्मलोक ।

३. ऊर्ध्वस्थ ब्रह्मलोक । [अधिष्ठाता ब्रह्मा]

(इन दोनों लोकों में गुण और आनन्द में प्रभेद है।)

४. कैलास, वैकुण्ठ और गोलोक ।

शिव दुर्गा कैलास के, (चतुर्भुज) विष्णु और लक्ष्मी वैकुण्ठ के और (द्विभुज) कृष्ण और राधा गोलोक के अधिपति हैं। ये तीनों लोक प्राय: सम-स्तर के हैं ऐसा कहा जा सकता है।

५. कार्यब्रह्म ।

६. परब्रह्म ।

सद्गुरु का आश्रय पाने पर साधक यदि साधारण अधिकारी हों, तो उनकी योग्यता और प्राक्तन-कर्म के अनुसार देहान्त होने पर उनकी गति स्वर्लोक से तपोलोक तक हो सकती है। यदि प्रथम भूमि की आद्यावस्था के हों तो गति कम से कम सत्यलोक और अन्तिम अवस्था का होने से गति देवीलोक है। द्वितीय भूमि की आद्यावस्था की गति अन्तत: देवीलोक और अन्तिम अवस्था की गति निम्नस्थ ब्रह्मलोक है। तृतीय भूमि की आद्यावस्था में अन्तत: निम्नस्थ ब्रह्मलोक प्राप्ति, तथा अन्तिम अवस्था में एवं चतुर्थ भूमि की प्रथमावस्था में ऊर्ध्वस्थ ब्रह्मलोक प्राप्ति होती है। चतुर्थ भूमि की शेष और पञ्चम भूमि की प्रथम अवस्था में गति और स्थिति वैकुण्ठ या कैलास में होती है। बाद में साधक कुछ काल गोलोक में स्थित रहकर अन्त में कार्यब्रह्म होकर पूर्णब्रह्म में प्रविष्ट हो जाते हैं। पञ्चम के बीच या अन्तिम अवस्था में देहान्त होने पर कैलास या गोलोक के बीच होकर कार्यब्रह्म और फिर परब्रह्म में गति हो जाती है। यहाँ कार्यब्रह्म में किञ्चित् स्थिति होती है। षष्ठभूमि में अर्थात् ब्रह्मरूपता सिद्ध होने पर शरीरान्त के बाद कार्यब्रह्म में स्थिति नहीं होती, सीधा परब्रह्म में प्रवेश हो जाता है।

ऊपर के अनुच्छेद में लिखित सभी उक्तियाँ सगुण-साधकों अर्थात् भक्तों के सम्बन्ध में प्रयोज्य समझनी चाहिये। निर्गुण साधकों के विषय में मैंने कोई प्रश्न नहीं किया। उनकी गति के सम्बन्ध में शोभा माँ ने श्रीयुत गोपीनाथ कविराज को एक पत्र में इस प्रकार लिखा था, "निर्गुण साधक निर्विकल्प समाधि के पहले देहत्याग करने पर अध:स्थित ब्रह्मलोक में जाएँगे और निर्विकल्प समाधि प्राप्त करने पर यदि शरीर-त्याग करें तो ऊर्ध्व-स्थित ब्रह्मलोक में जाएँगे। समाधि के बाद कैवल्य प्राप्त होने पर मृत्यु होने से कार्य-ब्रह्म को गति होगी।"

नाम देने और दीक्षा देने के सम्बन्ध में भी शोभा माँ ने मुझसे कई बातें कही हैं। दोनों के फल में प्रभेद की बात और माला-तिलक-धारण के सम्बन्ध में कई बातें पहले प्रसङ्गानुसार कही गई हैं। यहाँ और भी कई उपदेश दिए जा रहे हैं।

तिलक-धारण से मन सात्त्विक भावापन्न होता है। भगवान् के अङ्गों में तिलक है, अतः तिलक धारण करना पड़ता है। इन दोनों में भेद नहीं है। सम्प्रदाय-भेद से नाना रूप के तिलक धारण करने की कल्पना की गई है। तिलक बारह अङ्गों पर धारण किया जाता है।

दीक्षा लेने से आसन पर बैठकर जप करना होता है। नाम लेने पर भी आसन पर बैठकर नाम लेना अच्छा है। कम्बल का आसन प्रशस्त है। आसन पर बैठने से शरीर से विद्युत् का अपचय नहीं होता।

नाम लेने या दीक्षा लेने पर गुरु की पट-पूजा, भोग, आरती इत्यादि करना अच्छा है, किन्तु अवश्य-कर्त्तव्य नहीं है। इन सब आनुषङ्गिक कार्यों द्वारा मन उस ओर जाता है। यह सब सेवा अधिक करे और जप इत्यादि कम करे तो भी काम चल जाता है।

गुरु के शरीर में रहते समय (सामाजिक शृङ्खला इत्यादि के प्रति दृष्टि रखकर) शिष्य का पका अन्न ग्रहण न करने पर भी उनके देहान्त के बाद उनके चित्र के पास पक्वान्न भोग दिया जा सकता है। अपनी ही जाति भगवान् की जाति है।

स्फटिक, पद्मबीज और रुद्राक्ष की माला से तुलसी की माला में सत्त्व गुण अधिक होता है।

जप दोनों काल करना होता है। वह जितना ही किया जाय और जितनी बार किया जाय, उतना ही अच्छा। जप के समय पद्मासन इत्यादि आसन से बैठकर जप करने से फल अच्छा होता है। गुरुदेव जिसे जिस आसन से बैठने को कहें उसे उसी आसन पर बैठना मङ्गलकारी होता है।

जप के समय मन्त्र का ध्यान करना कर्त्तव्य है। जप के पूर्व, पहले इष्टदेवता का ध्यान और फिर गुरु का ध्यान करने पर जप करना चाहिए। जप के अन्त में भी इसी प्रकार ध्यान करना कर्त्तव्य है। मन्त्र के ध्यान का तात्पर्य—मन्त्र की ध्वनि को सुस्पष्ट भाव से सुनना।

मानस-जप ही उत्तम होता है। मानस-जप या उपांशु जप का उपदेश अधिकारी के भेद से दिया जाता है। मन्त्र का वाचिक जप कर्त्तव्य नहीं है। प्रणव सहित नाम का भी वाचिक जप कर्त्तव्य नहीं है। केवल नाम ही शब्द के साथ उच्चारण किया जा सकता है।

ध्यान मस्तक में ही करना अच्छा है।

अंत में मेरे पास लिखे गए कई पत्रों के कुछ-कुछ अंश इस स्थान पर उद्धृत किए जा रहे हैं—

(१)

भगवान् नववर्ष के समान—आप लोगों के आध्यात्मिक जीवन की अनुभूति भी नई कर दें, यह कामना करती हूँ। मणिलाल (मेरे एक चिर रुग्ण पुत्र और शोभा माँ के परम भक्त) किस प्रकार हैं? उनके रोग के समाचार से मैं चिन्तित रही हूँ। संसार की इन बाधा-विपत्तियों में भी भगवच्चरणों में मन को अचल और अटल रखिएगा। इन सब क्षुद्र से भी क्षुद्रतर बाधा-विपत्ति में भी यदि मन चंचल हो तो यह महान् समुद्र किस प्रकार पार करेंगे? यह सब कुछ-नहीं है। लीलामय की लीला की परीक्षा मात्र है। उनका खेल क्षोभ-रहित चित्त से देखते जाइए; तभी लीला का गूढ़ रहस्य समझ सकेंगे। भगवान् आप लोगों का सर्वाङ्गीण मङ्गल करें। उन्हीं की कृपा से उन्हें पकड़ सकें और पहचान सकें, यही कामना करती हूँ।

(२)

संसार में कितने ही कुश-कण्टक हैं, उन सबका अतिक्रमण करने के लिए एकमात्र गुरुदेव और उनका मन्त्र ही सहारा है। आप लोगों ने गुरु पाया है, अतएव उनके प्रति अटल विश्वास और भक्ति रखकर चल सकने पर ही इस भव-सागर को पार हो सकेंगे। संसार के सामान्य व्यापर में यदि अस्थिर हो जाएँगे तो यह महान् समुद्र रूप भव सागर किस प्रकार पार करेंगे? भगवान् के सभी कर्म मङ्गलजनक हैं। आपातत: दृष्टि से अमङ्गल देखने पर भी भविष्य में उसके द्वारा मङ्गल ही साधित होता है, इस विषय में कोई सन्देह नहीं।

(३)

कई दिन हुए आपका पत्र पाया। विदित हुआ कि आप सांसारिक झंझटों में हैं। यह बात सच है कि सभी क्षेत्रों में जो बड़ा होता है उसे ही अधिक आँधी-वर्षा सहनी पड़ती है। अवस्था या मन में जितना ही छोटा रहा जाय उतना ही आँधी का आघात कम सहन करना पड़ता है—आप भी धैर्य और गुरु-पाद-पद्म पर भरोसा रखकर सहनशील होकर रहिये; तब ही शान्ति पाइयेगा और साधन-भजन कर सकेंगे। धोबी के घर कपड़ा देकर जैसे निश्चिन्त रह सकते हैं (अर्थात् आप भली भाँति जानते हैं कि धोबी समय पर कपड़ा धोकर आपको धुले कपड़े दे जायगा)

उसी प्रकार कपड़ा-रूप मन और धोबी-रूप गुरु हैं। गुरु के घर मन देकर निश्चिन्त बैठे रहिये, देखियेगा समय पर गुरुदेव आपको निर्मल मन दे जाएँगे। धोने के लिए जितनी बार पटकने की आवश्यकता होगी, अवश्य ही पटकेंगे—पछाड़ेंगे। इसके लिए विचलित होने से नहीं चलेगा।

(४)

मन का विक्षिप्त होना ही स्वाभाविक है। अभ्यास द्वारा इसे वश में लाना होगा। अभ्यास हो जाने पर क्रमशः स्वभाव में स्थित हो जायगा। अभ्यास करने में असमर्थ होने पर गुरु जी पर आत्म-समर्पण करके बैठे रहना चाहिए। समय पर सब ही होगा, यही आशा मन में रखकर साधन-भजन करते जाइये।

(५)

साधन-भजन जो चल रहा है, उसे उन्हीं की इच्छा से हो रहा है समझियेगा। यदि उनकी इच्छा होगी तो वे और अधिक भी करा सकते हैं। न्यून या अधिक जिसके लिए जैसी आवश्यकता होती है वे स्वयं करा लेते हैं। इसी से जीव कल्याण-पथ पर अग्रसर होता है। उसके लिए व्याकुल होना अनावश्यक है। इसे मन में रखकर सर्वदा उनकी शरण में रहना ही श्रेयस्कर है।

(६)

आशा है, भगवत्कृपा से आप लोग सब आनन्द में हैं। गुरु-प्रदत्त मन्त्र का निष्ठापूर्वक जप करने से ही आनन्द मिलता है। आप ने महत्-जन को आश्रय और कृपा पाई है, इन्हीं की दी हुई शक्ति द्वारा उनको अनुभव करने को व्याकुल हों। व्याकुलता आने पर ही उनको अनुभव कर सकेंगे। गुरु पर भरोसा रखकर आप निर्विघ्न रूप से यह भव-सागर पार कर सकेंगे। साधन-भजन की पहली सीढ़ी है गुरु के ऊपर भरोसा रखना। उसी भरोसे के लिए गुरु के निकट प्रार्थना और प्राणों की व्याकुलता सुनानी होगी। वहाँ सब मङ्गल है। भगवत् कृपा से कुशल और आनन्द में रहें।

माँ तुम्हारे आशीर्वाद से इस लघु ग्रन्थ में तुम्हारी लीला-कथा समाप्त की।

प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः ।
तस्मिंस्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत् ॥
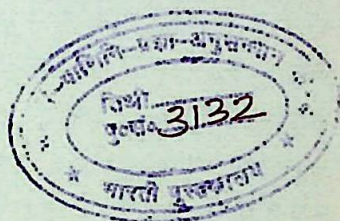
परिशिष्ट

मूल बँगला पुस्तक का प्रथम प्रकाशक मेरा चतुर्थ पुत्र मणिलाल (अभिजित कुमार दत्त गुप्त) था ८ सितम्बर, १९४२ ई० को २४ वर्ष की आयु में उनकी भवलीला समाप्त हुई। वह जिस प्रकार एक ओर चिररुग्ण था, उसी प्रकार दूसरी ओर आध्यात्मिक और मानसिक नाना गुणों का अधिकारी था और सन् १९३९ में ही श्री श्री शोभा माँ से "नाम" प्राप्त किया था। माँ के प्रति उसकी भक्ति और प्रीति असाधारण थी। माँ और सुकुमार बाबू भी उससे अत्यन्त स्नेह रखते थे। उसकी परलोक-यात्रा पर माँ ने जो पत्र मुझे लिखा था उसका अंश आगे दिया जा रहा है।

बरकान्ता
१२-९-४२

नारायणेषु—

XXX भगवान् ने उसे अपने चरण-तल में आश्रय दिया है, इसी कारण इतने बड़े दुःख में भी मैंने शान्ति पाई है। X X उसके अभाव ने स्थूलतः मुझे भी बड़ी व्यथा दी है। स्थूल रूप से यद्यपि आज मेरा पुत्र मेरी गोद में नहीं है, तथापि सूक्ष्मतः उसे मेरी गोद से कोई दूर नहीं कर सकता। वहाँ वह निरवच्छिन्न भाव से मेरी गोद में ही रहेगा। उसके लिए दुःख न करियेगा, उसकी गति उत्तम ही हुई है। बहुत दिन तक हो सकता है आप उसकी व्यथा को भूल नहीं सकेंगे, किन्तु वह अपनी माँ की गोद में आनन्द से है, यहं जानकर आप लोग सान्त्वना रखने का यत्न करियेगा। मौसी को सान्त्वना देने की चेष्टा कीजियेगा। इतने दिनों तक तो कलकत्ते में रखकर उसे स्वस्थ या रोगमुक्त नहीं किया जा सका। स्वभावतः जहाँ जाने पर स्वस्थ या नीरोग हुआ जाता है, उसका पुत्र वहीं गया है। पुत्र को स्वस्थ करने के लिए माँ पुत्र को कितनी-कितनी दूर देश में भी भेज देती है।

XXX इति शोभा।

इसी के साथ सुकुमार बाबू ने लिखा—XXX एक बात आप लोगों को इस दुःख में भी शान्ति दे सकती है। श्री श्री माँ से मालूम हुआ, मणिलाल का जन्म-मृत्यु का द्वार बन्द हो गया है। उसे और जन्म ग्रहण करना नहीं होगा।

इसके बाद श्रीयुत शिशिर बाबू ने माँ से पूछकर मुझे बताया—शोभा ने कहा है, मणिलाल सत्यलोक को गया है। लोगों की ऐसी गति बहुत कम होती है।

मणिलाल जन्म-मृत्यु से परे हो गया है, यह बात माँ ने औरों से भी बहुत बार कही है। यह उन्हीं की कृपा का फल है, इसमें सन्देह नहीं। मणिलाल की भाँति सद्वृत्ति का पालन करने पर सभी उक्त प्रकार की गति प्राप्त कर सकते हैं, इसे जानकर, आशा है, माँ की अन्य सन्तानें यथेष्ट आश्वासन प्राप्त करेंगी।

❋❋❋
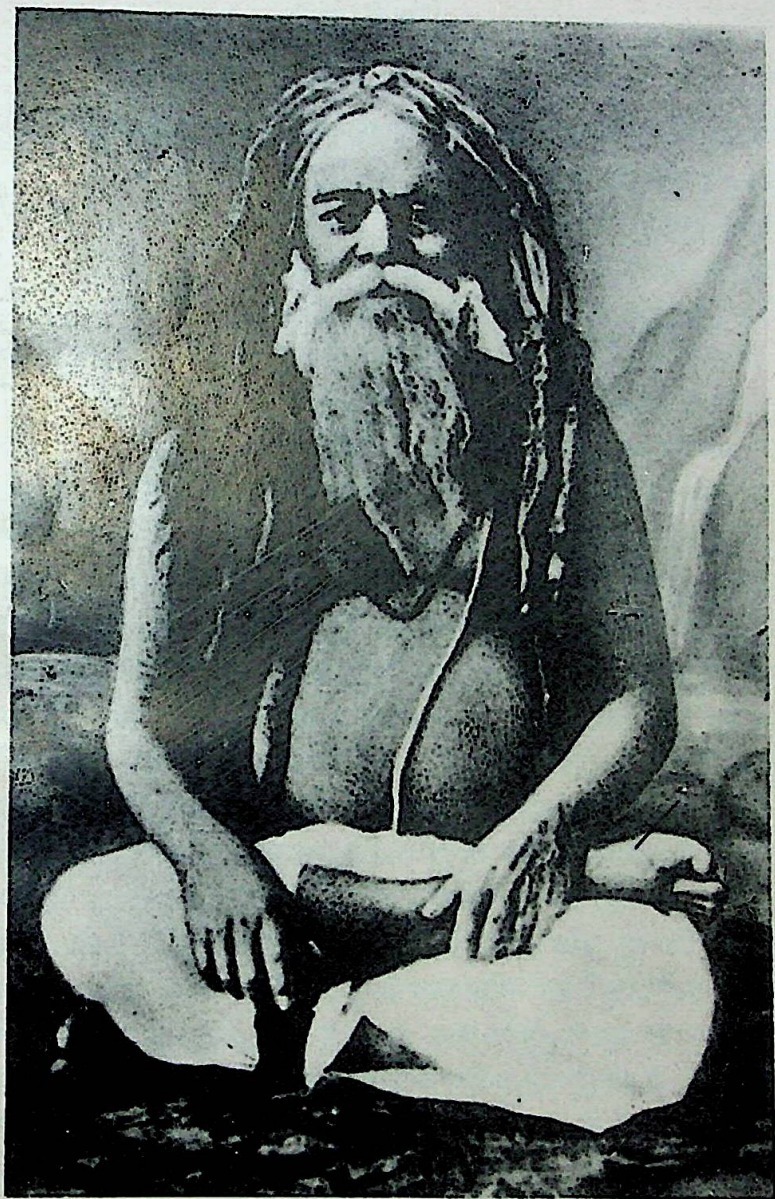
श्री श्री १०८ सन्तदास बाबा जी महाराज

स्मृति

(श्री श्री माँ)

बीच-बीच में एक-एक आलोड़न आकर अतीत की स्मृति को आलोड़ित कर हो सकता है कई बार मैंने इस स्मृति की चर्चा की है—फिर भी मेरी यह पुरातन तो होती ही नहीं है—वरन् जब भी बोलती हूँ अथवा अनुभव करती हूँ तभी ऐसा लगता है कि यह प्रथम स्मरण है। इसका कारण भी संभवत: यही है कि महापुरुष पुरातन नहीं होते—और उनकी स्मृति, प्रेम एवं स्नेह भी पुरातन नहीं होता।

मैंने अपने पूज्यपाद परमदयाल गुरुदेव श्री श्री सन्तदास बाबाजी महाराज को सर्वप्रथम श्रीहट्ट जिले के बनियाचङ्ग ग्राम में देखा था। उस समय मेरी उम्र ६-७ वर्ष लगभग हो सकती है। एक दिन एक नूतन प्रभात में देखती हूँ कि समस्त घर दरवाजे मानो नवीन सज्जा से सजे हुये हैं। बालसुलभ कौतुहलवश एक-एक व्यक्ति से प्रश्न करने लगी—आज क्या है? कोई कहता है, आज बाबाजी महाराज आयेंगे अथवा कोई कहता है, आज एक साधु महापुरुष आयेंगे अथवा कोई कहता है, समझोगी नहीं, चुप करके रहो, जब आयेंगे तब देख लेना। बात सुनते ही एक अनिर्वचनीय आनन्द अनुभूत हो रहा था और मन ही मन सोचने लगी कि ऐसे वे कौन हैं जिनके आगमन के उपलक्ष्य में अत्यन्त प्रभावशाली मेरे नानाजी तक अत्यधिक व्यस्त हैं। केवल व्यस्त ही नहीं, अपितु अधीरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं। माँ, मामा, मौसी प्रत्येक के अन्दर एक आनन्द मिश्रित व्यस्ततापूर्ण भाव था। यद्यपि विशेष कुछ भी समझ नहीं रही थी, फिर भी समझने जानने के लिये एक आकुल आग्रह था। मैंने देखा कि नानाजी के शयन-कक्ष में फर्श के ऊपर एक बड़ा कार्पेट् बिछाया जा रहा है। घर को चारों ओर से परिष्कृत करके एक विशेष नूतन तरीके से सजाया जा रहा है...। अस्तु, क्रम से जितना समय व्यतीत हो रहा था, उतना ही 'ये आ गये', 'ये आ गये' इस प्रकार का आनन्द मिश्रित भाव प्रत्येक के अन्दर ही स्फुटित होने लगा। और आने की आंकाक्षा, आग्रह जैसे प्रत्येक के नेत्रों एवं मुख से झलक रहा था। लगभग ९ बजे, हम लोग बड़े फाटक के सामने खड़े हो गये, और बीच-बीच में बाहर जाकर रास्ता देखने लगे। प्रत्येक के नेत्र एवं मुख पर एक ही प्रश्न था, आये नहीं क्या? उसके बाद—उसके बाद एक सौम्य शान्त उज्ज्वल

देवमूर्ति साधु आ गये। चतुर्दिक प्रत्येक व्यक्ति में अत्यधिक व्यस्तता दृष्टि गोचर होने लगी। आज समझ रही हूँ, जैसे कि यह अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति का आनन्द था। किन्तु यह व्यस्तता भी कुछ क्षणों के बाद रुक गई। सुना गया, समय नहीं है इसलिये घर के अन्दर नहीं जायेंगे, क्योंकि जाने का समय हो गया है। उसके बाद मानों ठेलाठेली मच गई, कौन किसके आगे प्रणाम करेगा, कौन पहले देखेगा—क्योंकि समय सीमित है। मुझे आज भी स्मरण हो आता है कि पालकी के अन्दर एक शान्त सौम्य देवमूर्ति को बैठे हुये देखा था, जिनको देखने से एकाएक देवाधिदेव महादेव की कथा स्मृत हो जाती है। हाथ में एक मोटी लाठी, नेत्रों में मानों आनन्द का स्फुलिंग् था। सर्वव्यापी मानों एक ही अभय वाणी थी—निकट आ जाओ, कोई भय नहीं है। आज भी स्मरण हो जाता है कि प्रणाम करके कुछ क्षण तक स्थिर दृष्टि से चाहा था—क्या एक अपूर्व आनन्द है! जिसको देखने से केवल देखते ही रहने की इच्छा करती है। ऐसा सुना था कि शुभ मुहूर्त अधिक क्षण तक स्थायी नहीं होता, किन्तु उस दिन इस बात की सत्यता मानों मर्म-मर्म में समझा गये। वे भी अधिक समय तक नहीं रहे, कितनी देर तक रहे वह तो आज याद नहीं है फिर भी बहुत थोड़े समय रहे यह मुझे याद है। धीरे-धीरे पालकी उनके गन्तव्य पथ की ओर बढ़ने लगी। जो लोग साथ गये थे उनके बारे में तो मैं नहीं जानती, किन्तु जो लोग रह गये थे उनको देखकर ऐसा लगा कि कुछ समय पहले जो आनन्द मुखरित चाञ्चल्य था, वह एक विषाद का रूप ले चुका है। भाव जैसे यही था कि अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति हुई थी किन्तु उसे सँभालकर रखा नहीं जा सका—चले गये। यह मानों एक कष्टकर निस्तेज भाव था। यह बाबाजी महाराज का मेरा प्रथम दर्शन हुआ।

इसके पश्चात् जीवन के और अनेक वर्ष कट गये, फिर भी उस दर्शन की स्मृति बनी रही। आनन्दमय रस से अन्तर मानों तृप्त था। ठाकुर देवता को देखते ही मेरे मानस-चक्षु के सामने वही देवमूर्ति उद्भासित हो उठती थी। मन जैसे बोल उठता था कि देवता वे ही हैं, प्रणाम भी उन्हीं के चरणों में करती थी। देवमूर्ति प्रिय थी, इसी कारण ठीक गुरु के आसन पर विराजित नहीं कर पाती थी। फिर भी वे महान् थे, इस सम्बन्ध में भी कोई संदेह नहीं था। बाल्यकाल से ही सुनती आ रही थी कि वे वैष्णव हैं, वे देवता हैं, वे सब जानते हैं, सब देखते हैं, भगवान् के साथ वार्तालाप करते हैं---- इत्यादि। इसका कारण यह था कि मेरे पूर्वाश्रम के ज्येष्ठ भ्राता शिशिर कुमार उनके शिष्य थे। मेरे बाबा (पिता) की भी उनके चरणों में स्वयं

समर्पित हो जाने की बड़ी आकांक्षा थी, किन्तु शाक्त और वैष्णव मत को लेकर बाधा थी। आज समझती हूँ कि हम लोगों के मन में कितनी बड़ी संकीर्णता थी। जो महान् हैं उनके पास साम्प्रदायिकता का कोई मतभेद नहीं होता। उच्चावस्था होने पर वह नहीं रहता, साधारण अवस्था में ही वह समझा जाता है। एरोप्लेन पर चढ़कर जितनी ऊँचाई पर उठोगे, उतना ही देखोगे कि नीचे की ओर समान होता जा रहा है। यह तो अवश्य अतिसाधारण दृष्टि से कहा गया है, आध्यात्मिक दृष्टि इससे बहुत ज्यादा पृथक् है। फिर भी ऐसा समझती हूँ कि साधारण भाव से ऊपर उठने से ही यदि ऊपर-नीचे का पार्थक्य बोध नहीं रहता, तब आध्यात्मिक दृष्टि से उन्नत होने पर क्या अवस्था होती होगी—यह तो वे ही जानते हैं। फिर भी वे ही जानते हैं, यह समझकर मत छोड़ देना; स्वयं भी जिससे जान सको ऐसी चेष्टा करते रहना। चेष्टा होने पर मेरे गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्त होगा।

द्वितीय दर्शन

वही शुभ मुहूर्त फिर आ गया—यह मानो एक आलोक है जो आता और चला जाता है, किन्तु स्थायी नहीं रहता। आषाढ १३४२ (बंगला) की २७ वीं ता० को सुबह सुना था कि पिताजी कुमिल्ला जायेंगे। 'किसलिये?' यह प्रश्न करने पर मैंने जाना कि भाई दा (शिशिर) का पत्र आया है कि बाबाजी महाराज कुमिल्ला आ गये हैं। पिताजी के पास आकर सहज भाव से प्रश्न किया, "पिताजी हम लोग नहीं जायेंगे?" मैं हमेशा से ही पिता की कुछ अधिक प्रियपात्री रही, उनका स्नेह मेरे प्रति कुछ विशेष रूप से था। पिताजी ने प्रत्युत्तर में कहा, "मैं इस समय अकेला ही जा रहा हूँ, जाकर देखता हूँ यदि सुविधा होगी तो बाद में आकर तुम लोगों को ले जाऊँगा।" मैं नहीं जानती कि इस आश्वासनपूर्ण वाक्य में क्या था? मेरे मन में दृढ़ विश्वास हुआ, पिताजी हम लोगों को कुमिल्ला अवश्य ले जायेंगे। बनियाचङ्ग ग्राम की स्मृति आँखों के सामने झलकने लगी। बालसुलभ बुद्धि से मन ही मन प्रणाम करके कहा, "बाबाजी महाराज! आप हम लोगों को ले जाइयेगा।" तभी से यह आशा करती रही कि पिताजी कब आयेंगे और हम लोगों को कुमिल्ला ले जायेंगे। संध्या-सयम खेलने ठीक ही गई, किन्तु मेरी अन्यमनस्कता का सुयोग पाकर दूसरा दल जीत ही जाता था। संगीजन कहते थे—"क्या हुआ है बोलो तो? खेल में जरा भी मन नहीं लगा रही हो।" मैंने कहा—"देखो, बाबा जी महाराज कुमिल्ला आये हैं। पिताजी कह गये हैं कि संभव होने पर हम लोगों को आकर ले जायेंगे। इसीलिये

बार-बार मन में आ रहा है कि पिताजी कब आयेंगे।" संगीजनों ने उस समय उपहासपूर्ण हँसी हँसकर कहा, "एक बार जब मौसा जी अकेले चले गये, तब फिर आकर नहीं ले जायेंगे।" ये सभी इन सब बातों को कहकर मेरा कितना उपकार करते थे, यह मैं अब समझती हूँ। क्योंकि उनके कहने के साथ ही साथ मुझे बाबाजी महाराज का स्मरण हो आता और मैं प्रार्थना करती थी कि "बाबाजी महाराज! ले जरूर जाइयेगा।" २५ ताः बीत गई। २७ ताः को प्रातःकाल ७ बजे पिताजी डाकगाड़ी से आ गये। मैं दौड़कर गई, पूछा—"क्या पिताजी?" मेरी आँखों में आकुल आग्रह था और मुख में प्रेमपूर्ण भाषा। पिताजी ने कहा—"हाँ माँ, तुम लोग जाओगे। तुम लोगों को लेने के लिये ही शिशिर ने मुझे भेजा है।" माताजी से कहा—"तैयार हो जाओ, ७-७॥ बजे घोड़ा गाड़ी से रवाना हो जायेंगे।" और कहा—"जानती हो, शिशिर के साथ शर्त लगाकर आया हूँ कि वह बाबा जी महाराज के द्वारा शोभा के मस्तक पर हाथ रखवाकर आशीर्वाद देने की व्यवस्था करेगा। इसी शर्त पर तुम लोगों को ले जाने के लिये राजी हुआ हूँ।" आज मैंने समझा कि भाई दा ने स्वयं जो आनन्द प्राप्त किया है, वही आनन्द अपने समस्त प्रियजनों को उपभोग कराना चाहते हैं, इसी कारण उनकी यह आकांक्षा, प्रचेष्टा थी। सचमुच, मेरा जीवन भाई दा की इसी प्रचेष्टा के कारण ही संभवतः अग्रसर होता चला गया। उनकी चेष्टा से ही बाबाजी महाराज का स्पर्श-सुख लाभ करके धन्य हुई। अस्तु, थोड़ी देर बाद ही मैंने अपने साथियों को अवगत करा दिया कि हम लोग बाबाजी महाराज को देखने जा रहे हैं। वह कितना अद्भुत आनन्द था, जिसे समझाने की भाषा मेरे पास नहीं है—संभवतः यह गुरुदेव की ही कृपा हो।

हम लोग १॥ बजे रवाना होकर लगभग ३ बजे फूफाजी (प्रियनाथ चक्रवर्ती, पिता के अभिन्न-हृदय बन्धु) के निवास पर पहुँच गये। वहाँ पर भी वे लोग हम लोगों के आने की प्रतीक्षा में थे। एक साथ जायेंगे, यह विचार करके वे लोग भी बाबाजी महाराज के दर्शनार्थ नहीं गये। हम लोग हाथ-मुहँ धोकर जाने के लिये तैयार हो गये। कितनी अद्भुत आकुलता, अभूतपूर्व आकर्षण था, मन में हुआ कब जाऊँगी? क्या देखूँगी? देखने में कैसा लगेगा? विचार-विमर्श करने का कोई उपाय नहीं है, जानती हूँ कि यदि मैंने किसी से कुछ पूछा तो बडों स्रे डाँट ही पड़ेगी। कारण, उस समय इनके अन्दर भी वही आकुलता थी। वे स्वयं ही जिज्ञासु हैं, मेरी जिज्ञासा का उत्तर और क्या देंगे? कब सभी तैयार होंगे और चल पडेंगे, इसीलिये प्रतीक्षा कर रही थी। इस समय ध्यान में आता है कि हम लोगों जैसे

साधारण जीवों में ही यदि ऐसा आकर्षण है और जाने के लिये मन इस तरह छटपटाने लगता है, तो वे महीयसी गोपनारियाँ किस प्रकार घर में रह सकतीं हैं? क्योंकि जाने के अतिरिक्त कोई उपाय ही नहीं है। नदी समुद्र का, वत्स गाय का, साधक महत् का अनुसरण करेगा ही—वह ज्ञात रूप में हो या अज्ञात रूप में।

अस्तु, लगभग चार बजे सुना 'चलो'। पहले ताऊ जी (वरदाकान्त राहा) के निवास पर पहुँचे। क्योंकि वे लोग भी एक साथ ही जायेंगे, इसलिये प्रतीक्षा में रुके हुये थे। उस जगह से दो लोग ताईजी और कौन यह ध्यान नहीं है, हमारे साथ हो लिये। हम लोग बाबाजी महाराज के दर्शनार्थ चल दिये। इस समय सोचा कि जब मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर दिया है तो गन्तव्य स्थान पर पहुँचेंगे ही। इसके पहले तक मन में आ रहा था कि जिसका चलना ही शुरु नहीं हुआ उसका पहुँचना क्या होगा? प्राय: साढ़े चार बजे हम लोग ईश्वर पाठशाला के महेश प्राङ्गण में जा पहुँचे। किन्तु पहुँचते ही निराश होना पड़ा। हम लोगों ने सुना कि बाबाजी महाराज कुछ क्षण पहले ही बाहर निकल गये हैं, लेकिन शीघ्र ही वापस लौटेंगे। किसी के मतानुसार आरती से काफी पहले, किसी के अनुसार आरती से कुछ ही पहले। मन व्यथित हो गया, कैसी व्यथा यह तो मैं नहीं समझी, फिर भी एक कष्ट था। प्रतीक्षा के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं था। आज यह सोचती हूँ कि इस प्रतीक्षा के द्वारा उनके स्मरण से मन-प्राण को निर्मल कर देना ही संभवत: उनका उद्देश्य था। उस समय उस स्थान का ऐसा ही माहात्म्य था कि सभी उन्हीं की चर्चा कर रहे थे। किसने कितनी बार देखा है। किससे उन्होंने क्या बात कही है। देखने में कितने सुन्दर हैं, इत्यादि नाना प्रकार की चर्चा चल रही थी। मैं जैसे सुनकर भी नहीं सुन रही थी, मन में एक ही चिन्ता थी कि कब आयेंगे? वे आयेंगे ही और देखूँगी, यह स्थिर विश्वास था। इसी कारण प्रतीक्षा में आग्रह था, किन्तु तपन नहीं थी। स्थिर विश्वास होने पर आग्रह ही बढ़ता है, इससे ज्वाला या अस्थिरता नहीं होती है। उनका स्मरण ही अस्थिर को कर देता है स्थिर। इस प्रकार से कुछ समय बीत गया। सूर्यदेव अस्त हो रहे थे। अपनी शेष ज्योति पृथ्वी को प्रदान किये जा रहे हैं, इसीलिये देने में स्निग्धता है, तीव्रता नहीं। इतनी देर तक जो प्रकाश वे प्रदान कर रहे थे, वह मानो आदेश पालनार्थ अथवा प्रयोजनवश था; किन्तु दिन के शेष भाग में जो आलोक वे प्रदान कर रहे हैं, वह प्रियजनों के निकट विदाई की ममता से मिश्रित आलोक था। यह मानो स्वत: प्रवृत्त देने का भाव था। जिस देने में जोर जबरदस्ती नहीं होती, उसी में शान्ति, सुख, आनन्द रहता है। इसीलिये महापुरुषों के

दान में इन समस्त गुणों का समावेश होता है। मनुष्यों के आदान-प्रदान में प्राय: स्वत: प्रवृत्तता का अभाव होता है, इसीलिये उनके देने में सुख के बदले दु:ख, आनन्द के बदले निरानन्द, स्निग्धता के बदले तीव्रता होती है। माँ जब अपने शिशु को स्वत: प्रवृत्त होकर प्यार करती है, तब उसके नेत्रों एवं मुख का रूप कितना मधुर, कितना स्निग्ध होता है और जब वही प्यार सन्तान जबरदस्ती लेना चाहती है, तब उस समय वह सम्पूर्ण कार्य दायवत् होता है; दोनों के मध्य काफी पार्थक्य है।

सूर्यदेव की शेष आलोकरश्मियों के मध्य ही बाबाजी महाराज आकर खड़े हो गये मानों हाथ में लेकर आये हों नव प्रदीप! आज स्मरण करती हूँ कि उस समय यही भाव प्रबल था—'सूर्य के आलोक का उदय-अस्त है, किन्तु मेरा प्रकाश कभी अस्त नहीं होता।' क्यों, जानते हो? सूर्य ससीम है, बाबा जी महाराज असीम। उनके शुभागमन के पूर्व क्षण अवश्य एक शब्द कान में पड़ा था, बाबा जी महाराज आ रहे हैं, बाबा जी महाराज आ रहे हैं, इसकी प्रतिध्वनि के उत्तर रूप में मानों मोटर का शब्द कान में पड़ा। जिस जगह शंख, घण्टा और काँसे का शब्द होना उचित था, उसकी जगह यान्त्रिकयुग में मोटर का घर्घर शब्द सुनना पड़ा। झाँककर देखा, एक उज्ज्वल देवमूर्ति गाड़ी से उतर रही है। जिस समय नीचे उतरकर खड़े हुये उस समय सूर्य के स्निग्ध आलोक एवं स्वयं की स्वभावसिद्ध स्निग्धता के कारण कैसे अद्भुत रूप को धारण करके दर्शन दिया, उसको भाषा के द्वारा व्यक्त करने की क्षमता मुझमें नहीं है। संभवत: सूर्यदेव भी अपनी विदाई के पहले प्राणभरकर बाबाजी महाराज को देखे ले रहे हैं। और हम लोगों ने भी ऐसे सुयोग में आलोकमय को आलोक में ही देख लिया। उसके उपरान्त देखा, धीरे-धीरे ज्योतिर्मय मूर्ति अग्रसर हो रही है—थोड़ी देर बाद मैं उन्हें और नहीं देख सकी। सभी के मन में एक प्रश्न था, चले गये? अथवा किसी ने सवाक् प्रश्न किया, चले गये? सहवर्ती साधुओं ने कृपापरवश होकर उत्तर दिया—"नहीं, हाथ मुँह धोकर आरती में जायेंगे, आप लोग ठाकुर-दालान के सामने जायँ।" उस समय धक्कमधक्का मच गया। इस समय तक मानो सतोगुण का खेल चल रहा था, अब जैसे रजोगुण जागृत हो गया। अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिये कुछ रजोगुण का प्रयोजन अवश्य होता है। रज ही अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने की साधना में सत्त्व को अग्रसर कर देगा। कौन पहले उनके निकट स्थान ग्रहण करेगा, इसीलिये यह धक्कम धक्का अथवा साधना है। हम लोग खड़े ही रहे, संभवत: यही भाव था कि हम लोग कहाँ जाकर खड़े होंगे,

इसकी व्यवस्था भाई दा ही करेंगे। कार्य में व्यस्त होते हुये भी इस सम्बन्ध में एक साधु जी ने आकर कहा—शिशिरदा ने आप लोगों को इस स्थान पर जाने के लिये कहा है। भीड़ को ठेलते हुये मन्दिर के सामने जाकर देखा, काँसे के अहाते में बाबाजी महाराज खड़े हुये हैं—ठीक उनका निकटवर्ती स्थान हम लोगों के लिये निर्दिष्ट था। इसके साथ ही साथ आरती आरम्भ हो गई। आरती कितनी देर तक मैंने देखी, वह तो आज स्मरण नहीं है, फिर भी अचल देवमूर्ति की ओर न देखकर बाहर की सचल मूर्ति की ओर देखते रहने की भूल नहीं की, वह आज भी मन में है। जिन्होंने यह भूल नहीं करायी, आज भी उनको मन ही मन प्रणाम करती हूँ।

आरती समाप्त होते ही स्तुति पाठ आरम्भ हो गया। समवेत कण्ठ से उत्पन्न वह अतिगम्भीर स्वर मानों अज्ञात को जानने के लिये आग्रह बढ़ा देता है, उचित ताल-लय का वह कितना सुन्दर समावेश था। मन में आया कि मैं कितनी क्षुद्र होते हुये भी उनकी ही कृपा से उनकी स्तुति पाठ करने में समर्थ हो रही हूँ। महान की स्तुति से महान का कुछ आता-जाता नहीं, फिर भी क्षुद्र महान होने का सुयोग प्राप्त करता है; क्योंकि क्षुद्र के अन्दर ही महान का बीज विद्यमान है। इन सब स्तव-स्तुति-अर्चना से वही बीज प्रस्फुटित होने का सुयोग प्राप्त करता है। बृहत् अश्वत्थ वृक्ष पहले एक क्षुद्र बीजाकार में ही रहता है। जल, वायु, मिट्टी के संस्पर्श में आकर वह क्रम से बृहदाकार लेकर प्रकाशित होता है; यह भी उसी प्रकार है। यह सब स्तव-स्तुति-अर्चना, जल,वायु,मिट्टी के संस्पर्श की भाँति है; इसीलिये स्तव स्तुति इन सबका इतना मूल्य है। तुम लोग भी उनकी निरन्तर अर्चना करने की चेष्टा करो। शुष्क मिट्टी की अपेक्षा गीली मिट्टी में बीज सहज रूप से प्रस्फुटित हो सकता है। जमीन को भिंगाकर रखने का अर्थात् मन को सहज सरल सुन्दर रखने का प्रयत्न करो।

प्रायः पौने एक घण्टे के बाद स्तव-स्तुति समाप्त हो गई। उसके बाद सुना 'जय' दी जा रही है। क्रमशः ठाकुरजी, दादा गुरुजी, गुरुजी की जय दी गई। उसके बाद ही प्रणाम आरम्भ हुआ। कोई साष्टांग प्रणिपात कर रहा था, कोई घुटने टेककर प्रणिपात कर रहा था, अथवा कोई स्थान के अभाव में अपना सिर दूसरे के सिर के ऊपर ही झुका रहा था। इस प्रकार जितनी भी ठोका ठोकी क्यों न हो, सबका उद्देश्य वही एक है। ठाकुर जी को प्रणाम करके उठते ही मैंने आकुल आग्रहपूर्ण नेत्रों से बाबाजी महाराज को खोजा, किन्तु उनको नहीं देख पा रही थी। उसी समय सुनाई दिया, मन्दिर के बाहर प्राङ्गण में जाकर बाबा जी महाराज बैठे हुये हैं। वहीं

उपदेश देंगे, तब अपनी-अपनी जिज्ञासा का समाधान भी कर सकते हैं। हम लोग एक ही स्थान पर खड़े थे। भाव पूर्ववत् ही था अर्थात् समय होने पर भाई दा ही निर्दिष्ट स्थान पर बैठने की व्यवस्था कर देंगे। कार्य रूप में परिणत भी वैसे ही हुआ। कुछ क्षण बाद एक साधु जी ने आकर कहा—"चलिये, आप लोगों को बाबाजी महाराज के पास ले चलता हूँ।" उस समय रास्ता और दिखलाई नहीं पड़ रहा था, अगणित मनुष्यों के सिर दृष्टिगोचर हो रहे थे। नियम भी यही है, चतुर्दिक् बन्धन के भीतर से ही अपनी मुक्ति का पथ निकालना होगा। हम लोग भी इन अगणित लोगों के धक्के खाकर धक्के देते हुये लक्ष्य वस्तु की खोज में बढ़ने लगे। उस समय आँखों के सामने लोगों के अतिरिक्त और कुछ भी दृष्टिपथ में नहीं आ रहा था। क्रमशः रास्ता खाली होने लगा, उन्होंने कृपापरवश होकर ही मानों रास्ते की संकीर्णता को मिटाकर उसे प्रसारित कर दिया हो। विस्तीर्ण मार्ग को पाकर हम लोग शीघ्रतापूर्वक उनके निकट पहुँच गये। साधन-पथ में भी यही होता है। पहले मार्ग की दुर्गमता होती है, उस दुर्गम पथ को देखकर यदि बिना भयभीत हुये अग्रसर होते रहो तो देखोगे कि भीषण रूप ने परिवर्तित होकर सुन्दर रूप ग्रहण कर लिया है। संकीर्णता प्रसारता में बदल गयी है। इसलिये कण्टकाकीर्ण पथ को देखकर वापस मत लौटो, चलते रहो, फूलों का पथ मिलेगा ही और फूलों के स्वामी का दर्शन भी अवश्य मिलेगा।

अस्तु, उस स्थान पर पहुँचकर देखा कि बाबाजी महाराज के ठीक पास ही हम लोगों के बैठने का स्थान निर्दिष्ट हुआ है। बाबाजी महाराज थोड़ा टेक लगाकर आराम कुर्सी पर बैठे थे। मैं उनके ठीक पास ही बैठ गई। उनका हाथ बीच-बीच में मेरे शरीर में लग रहा था। आषाढ़ मास अत्यधिक गर्म, उसके ऊपर लोगों की भीड़। बाबाजी महाराज के माथे पर पसीने की बूँदें झलक रहीं थी। मन में आ रहा था यदि थोड़ी हवा की जाती, अन्तर्यामी ने तत्क्षण ही प्रार्थना पूर्ण कर दी। एक साधु जी ने ताड़ का पंखा लाकर मेरे हाथ में देते हुये कहा—बाबा को हवा करो। मैंने भीत भाव से बाबाजी महाराज की ओर देखा, किन्तु उनके नेत्रों में सम्मति का चिह्न मैंने पाया। धीरे-धीरे हवा करने लगी। इससे मेरे मन में अहंकार आया था या नहीं यह मुझे याद नहीं, उसी समय देखा एक भद्र पुरुष आकर अकस्मात् मेरे हाथ से पंखा लेकर चले गये, बोले—मैं हवा करूँगा। मुझे प्रतिवाद करने का साहस न हुआ, लेकिन नीरव शिकायत भरी दृष्टि से बाबाजी महाराज की ओर निहारने लगी। काम हो गया। फिर मैंने देखा पहले वाले वे ही साधु जी दूसरे के हाथ में

पंखा देखकर दौड़े आये, डाँटने के स्वर में मुझसे कहा—"पंखा दिया क्यों?" मैंने भीतभाव से कहा—"दिया नहीं, ले गये" उस समय उन्होंने भद्र पुरुष को डाँटते हुये कहा—"कन्याओं को सेवा का अवसर देना सीखिये।" यह कहते हुये जबरदस्ती पंखा लाकर मेरे हाथ में देते हुये कहा—"देखिये फिर से मत दीजियेगा, कसकर पकड़े रहियेगा।" इस बात से मुझे भी बल मिला।

उस समय अनेक प्रकार की चर्चा चल रही थी। वह सब विशेष मन में नहीं है। २-१ प्रसङ्ग असम्बद्ध रूप में जो मन में हैं, उसको भी लिखने में विशेष भरोसा नहीं है, यह सोचते हुये कि उसमें कहीं त्रुटि न रह जाय। एक ओर प्रश्नोत्तर कान में पड़ रहा था, दूसरी ओर नेत्र उन्हें प्राणभरकर देख रहे थे, हाथ हवा करते हुये चल रहे थे। अकस्मात् मन में आया कि माँ, ताई जी आदि को कुछ सेवा का सुयोग दूँ। स्वतः प्रवृत्त होकर ही उनके हाथ में पंखा देकर उनको भी थोड़ा सेवा का सुयोग दिया, थोड़ी देर बाद ही अपने हाथ में पंखा ले लिया। सौभाग्य और कितनी देर तक रहता है? स्थायी वस्तु न पाने तक सभी क्षणस्थायी है। इसीलिये यह सौभाग्य भी क्षणस्थायी ही रहा। सुना एक घण्टे चर्चा हुई थी, बाबा का शरीर विशेष स्वस्थ नहीं था, इसीलिये बाबा को इस समय विश्राम के लिये उठाकर ले जाया जायेगा। फिर से प्रणाम की हड़बड़ी मच गयी। हम लोग पास ही थे, इसीलिये जल्दबाजी न करके धीरे-धीरे प्रणाम किया। प्रणाम करके धीरे-धीरे ज्यों ही माथे को उठाने लगी, उसी समय उस सुन्दर निर्मल आशीर्वाद लिप्त हस्त ने मेरे मस्तक का स्पर्श किया। क्या अनास्वादित आनन्द था। मैंने मानों सुध-बुध खो दी—अभिभूत हो गई। मन ही मन उनके चरणों में तीन प्रार्थनायें कीं। आज देखती हूँ कि उन्होंने मेरी वे तीन प्रार्थनायें तो पूर्ण कर ही दीं, अज्ञात अनेकों क्षुद्र-क्षुद्र प्रार्थनायें भी उन्होंने पूर्ण कर दी हैं। हम लोग उनसे याचना ही कितनी कर सकते हैं? चाहने के पूर्व ही मातृतुल्य प्राप्तव्य वस्तु को लाकर हाजिर कर देते हैं। उन्होंने मेरे लिये कोई अभाव, कोई कमी नहीं रखी। दयालु होने के कारण ही उनका नाम दयामय है। एक प्रार्थना ही मन में जागृत होती है—हे दयालु! तुम्हारी दया के बिना कङ्गाल जन की गति नहीं है। तत्पश्चात्? तत्पश्चात् धीरे-धीरे वे उठ गये। सुन्दर मन्थर गति से अपने कक्ष की ओर वे चले गये। उनका घर उन्हें मिल गया है—इस समय हम लोग घर के सन्धान में हैं। गृहदेवता बाहर आकर दर्शन दे गये—गृह में तो नहीं लिया। हम लोग इस समय भी बाहर ही हैं, गृहप्रवेश का अधिकार तो पाया नहीं है; इसीलिये कृपा करके देवता ने बाहर आकर दर्शन व स्पर्शन के द्वारा गृह में घुसने की व्यवस्था संभवतः

कर दी है। कारण, इसके बाद ही जिस समय हम लोग अपने-अपने घर लौटे, उस समय सुना—घर में घुसने की क्या व्यवस्था की जाय, इसी की चर्चा चलने लगी।

भाई दा ने अकस्मात् मेरे प्रति जिज्ञासा व्यक्त की—"क्या, नाम लोगी?" मैं—"कृष्णमन्त्र?" भाई दा—"हाँ, बाबाजी महाराज साधारणतः अन्य मंत्र नहीं देते हैं।" मैंने प्रत्युत्तर में कहा—"तब किस प्रकार हो सकता है? छोटे से लेकर ज्ञान होने तक, माँ काली, माँ काली जप किया है; आज हठात् कृष्ण को कैसे पुकारूँ?" भाई दा ने उस समय पिता जी से कहा—"सुकाका, आप नाम न लें शोभा से कहें।" पिताजी ने कहा—"मैं नहीं कहूँगा, फिर भी यदि वह लेना चाहती है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" अपने ऊपर विचार का भार पड़ने से ही मुश्किल होती है। पिताजी यदि 'नाम ले लो' या 'नहीं लो' बोलते तो मेरे लिये कोई कठिनाई न आती। संकीर्ण मन बार-बार विचार करने लगा कि आज यदि मैं कृष्ण मन्त्र की दीक्षा ले लूँ तो कहीं माँ काली नाराज न हों, मुझे दण्ड न दे दें······ इत्यादि। हम लोग मनुष्य बुद्धि से देव-देवी आदि के सम्बन्ध में विचार करने लगते हैं, किन्तु यह उसी प्रकार अशक्य है जिस प्रकार कि बच्चे के दुग्ध-पान कराने के चम्मच द्वारा समुद्र के जल को उलीचना। आज मैं यह समझती हूँ कि सब एक है—एक परमदेवता का ही बहु रूप में प्रकाश है, क्योंकि वहाँ राग-द्वेष मतभेद कहाँ से आ सकते हैं? हम लोग यह सब सोचकर अपने मन की संकीर्णता का ही परिचय देते हैं। देवता को देवता न कहने पर देवता का कुछ आता-जाता नहीं, मनुष्य-मन का ही परिचय मिलता है। आज यह भी जानती हूँ कि माँ सन्तान को पिता की गोद में देकर ही अपने को सार्थक समझती हैं। प्रसव-गृह से बाहर जब तक पिता की गोद में सन्तान को दे नहीं पातीं तब तक उनके मन में अपूर्णता ही बनी रहती है। जागतिक विषयों में ही यदि यह देखती हूँ तो आध्यात्मिक विषयों की तो कोई बात ही नहीं है। अस्तु, मन की इस संशय व दुविधापूर्ण अवस्था को लिये हुये घर में आकर खा-पीकर बिस्तरे पर गई। कैसी अशान्तिपूर्ण अवस्था! बिस्तरे पर लेटे हुये ही माँ काली से प्रार्थना करने लगी—माँ, तुम्हीं मुझे संशय व द्वन्दमयी अवस्था से मुक्त करो। तुम मेरे विषय में जो कल्याणमय हो वही कर दो। देर रात्रि तक यही प्रार्थना करते-करते न जाने किस समय निद्रा देवी की गोद में सो गई।

२८ ता: (बँगला) को भोर के समय एक प्रशान्ति लिये निद्रा भङ्ग हुयी—किसी प्रकार का संशय व द्वन्द मेरे मन में नहीं था। एक अपूर्व शान्ति से मन-प्राण ओतप्रोत थे। कैसे, क्या हुआ? यह मैं नहीं जानती। फिर भी आज यह

सोचती हूँ कि कृपामय के कृपाकण से सभी कुछ संभव है, और यह तो अतिक्षुद्र है! मैंने बिछौने पर से ही पिताजी से कहा—"बाबा! मैं बाबाजी महाराज से नाम लूँगी।" पिता जी ने कहा—"सचमुच?" मैंने कहा—"हाँ बाबा।" पिताजी अतिप्रसन्न होकर बोले—"उठकर हाथ मुँह धोकर शौचादि कार्यों से निवृत्त होकर स्नान करके तैयार हो जाओ। मैं तुमको ८ बजे ले जाऊँगा।"

उस समय मेरी एक अद्‌भुत अवस्था थी। आशापूर्ण आनन्द के कारण मेरे पैर जैसे जमीन पर नहीं पड़ रहे थे, बीच का समय कब बीत गया महसूस ही नहीं हुआ। पिताजी अपने दैनिक क्रियाकर्म पूर्णकर साढ़े सात बजे मुझे ले जाने के लिये प्रस्तुत हो गये। इसी समय बूआ जी ने आकर पूछा, "दादा! (भाई) क्या आप कुछ खाकर जायेंगे?" पिताजी ने कहा, "मैं खाकर क्यों नहीं जाऊँगा? मुझे तो नाम नहीं मिलेगा, शोभा को मिलेगा—वह नहीं खायेगी।" इसी स्वर से यह स्पष्ट हुआ कि वास्तव में 'नाम' न पाने के लिये कितनी व्यथा थी, वह संभवतः अन्तर्यामी बाबाजी महाराज को स्पर्श कर गई। वास्तविक आकांक्षा थी, इसीलिये संभवतः प्राप्ति में विलम्ब नहीं हुआ। इसका विवरण पीछे दिया जायेगा। अस्तु, पिताजी हलुआ खाकर प्रायः आठ बजे मुझे लेकर चल दिये। मैंने जाने के पूर्व क्षण ठाकुर घर में जाकर प्रार्थना की थी—हे माँ काली! तुम्हीं मेरी बाबाजी महाराज से भेंट करा दो। जैसे उस समय इस प्रार्थना से ही मन-प्राण तृप्त हो गये थे। किसी संशय, द्वन्द का स्थान नहीं था। मन में लगा मानों माँ के मुख पर हँसी की छटा हो! उसके बाद माता-पिता को प्रणाम करके रवाना हो गई।

प्रायः सवा आठ बजे ईश्वर पाठशाला के प्राङ्गण में पहुँच गई। मुझे देखकर भाई दा तो अत्यन्त आनन्दित हुये, किन्तु पिता के नेत्रों एवं मुख पर (नाम) न पाने की एक व्यथापूर्ण छाप थी। भाई दा मेरा हाथ पकड़कर बाबाजी महाराज के कक्ष की ओर चल दिये। पिताजी ने जल्दी ही दो रुपये गुरु-प्रणामी के लिये मेरे हाथ में दे दिये। मैंने भाई दा के साथ घर में घुसकर देखा—सभी दीक्षार्थीगण दीक्षा के लिये प्रस्तुत होकर घर के मध्य में आकर एकत्रित हो गये हैं। बाबाजी महाराज आँख उठाकर भाई दा से प्रश्न किये, 'क्या?' भाई दा ने कहा—यह नाम लेगी। अन्य लोग उस समय फुसफुसाने लगे कि इस समय नहीं हो सकता, सब दीक्षार्थीगण प्रस्तुत हैं। नाम लेने के लिये और पहले ही आना उचित था—इत्यादि अनेक मन्तव्य कभी-कभी कान में आ पड़ते थे। किन्तु उस समय मैं सम्पूर्ण निर्भरशील होकर

खड़ी थी। देखती हूँ बाबाजी महाराज क्या बोलते हैं, क्या करते हैं? बाबाजी गुरु गम्भीर स्वर में बोले—"एक टुकड़ा कागज ले आओ।" मैं उस समय की अपनी अवस्था व्यक्त करने में असमर्थ हूँ—आवेग, आनन्द सभी का एक अपूर्व समावेश। कागज लाया गया, वे कलम से कुछ लिखे—उसके बाद मुझे निकट बुलाये। दीक्षार्थीगण कुछ अवाक् हुये और जो लोग बाहर थे वे और भी अवाक् हो गये। वे इस व्यवहार से कुछ आश्चर्यचकित रह गये। ये मानो बाबाजी महाराज का स्वाभाविक कार्य नहीं था। दीक्षार्थीगण कमरे में थे, उन्हें दीक्षा न देकर असमय में आये हुये प्रार्थी को पहले 'नाम' दिया। मैं आगे बढ़ गई। बाबा ने सुमधुर स्वर में कहा—"पगली माँ! बालों को बाँध लो, खुले बालों से काम नहीं होता।" उस समय मेरे छोटे-छोटे बाल थे, शीघ्रतापूर्वक दोनों हाथों से उन्हें बाँध लिया। उसके बाद......उसके बाद बाबाजी महाराज ने अति स्नेह से एक हाथ मेरी पीठ पर रखा, दूसरे हाथ से मन्त्र लिखित कागज पकड़ा। उसके साथ ही साथ मुझे उच्चारण करने के लिये कहा। वे अपने अपूर्व स्वर में लिखित मन्त्र का उच्चारण करने लगे, मैं भी साथ ही साथ अनुकरण करने लगी। आनन्द की एक अपूर्व हिल्लोल से मेरा शरीर कम्पित होने लगा। तीन बार इसी प्रकार पाठ किया। उसके बाद कागज हाथ में देकर बोले—"इसमें ही तुम्हारा इष्टमंत्र है, सयत्न रख देना।" मैंने उस समय कागज हाथ में लेकर बाबाजी महाराज को प्रणाम किया। वे एक खाट पर बैठे थे, सामने एक छोटी चौकी थी। उठकर देखा छोटी चौकी के ऊपर पद्मवत् दो चरण शोभा पा रहे थे। मैंने पहले भी सुना था एवं देखा भी था कि पैरों में हाथ नहीं लगाने देते, कोई जबरदस्ती स्पर्श करता तो वे क्रोधित हो जाते थे। इसलिये क्या करूँ? मैं समझने में असमर्थ थी और प्रश्नबोधक दृष्टि से बाबाजी महाराज के मुँह की ओर देखने लगी। उन्होंने सम्मतिसूचक सिर हिलाया। और मुझको कौन पा सकता है? मैंने जी भरकर अपने हाथों से उनके चरणों को स्पर्श करके प्रणाम किया। प्रणाम के पश्चात् दक्षिणा के रूप में दो रुपये उनके चरणों में चढ़ा दिये। प्रणाम करके उठते ही सुना, जल्दी-जल्दी बाहर आने के लिये बाहर से लोग दबाव डाल रहे हैं; क्योंकि मेरी वजह से अन्य दीक्षार्थियों को देरी हो रही थी। मैं बाबाजी महाराज की ओर देखते-देखते कमरे से बाहर चली आयी। बाहर आने पर ध्यान में आया कि इतनी देर तक अतिपरिचित स्थान पर रही, इस समय मानो अपरिचित स्थान पर खड़ी हूँ, जैसे कुछ अन्यमनस्क सी हो गई थी। कौन है, कौन नहीं, किसके साथ आई थी, कुछ जैसे समझ नहीं पा रही थी। इसी समय पिताजी का स्वर कानों में

पहुँचा—"शोभा! जल्दी-जल्दी घर चलो, मैं भी दीक्षा लूँगा।" मैं बिल्कुल अवाक् रह गयी। पिताजी ने मेरी अवस्था देखकर कहा—"तुम तो अवाक् होओगी ही, मैं ही अपने मन की अवस्था देखकर अचम्भित हो रहा हूँ।" बाद में रास्ते में जाते-जाते बोले—"समस्त गुरु भाई लोगों ने मुझे समझा दिया है, कृष्णमंत्रपूर्वक दीक्षा लेने से माँ काली असन्तुष्ट नहीं होती हैं·····इत्यादि। मेरे मन में भी इस समय कोई संशय नहीं है, बल्कि उसके बदले दीक्षा लेने की तीव्र उत्कण्ठा ही है।" मैंने कहा—"बाबा! जानते हो, मैंने भी 'नाम' लेने के बाद बाबाजी महाराज के निकट प्रार्थना की थी, बाबाजी महाराज मेरे बाबा को दीक्षा दो।" पिताजी ने कहा—"ये लोग तो अन्तर्यामी होते हैं, सभी कुछ जानते हैं, संभवत: वही हो सकता है।" इसी प्रकार कुछ बातें करते हुये हम लोग फूफा जी के घर के पास पहुँच गये। पिताजी ने घर में घुसते ही फूफा जी से कहा—"प्रियबाबू! आप सुरुचि (शोभा माँ की माताजी) को स्नान कराकर पाठशाला ले जाइये, हम लोग दीक्षा लेंगे।" सभी केवल अवाक् ही नहीं—निर्वाक् हो गये। प्रत्येक के मन का भाव यही था कि क्या कहने लग रहे हैं, जो घोर शाक्त है, वही वैष्णव होगा? सर्वोपरि सबेरे खाकर भी गये हैं, खाने के बाद महापुरुष के निकट कैसे दीक्षा हो सकती है? फूफा जी ने कहा—"सुरुचि ने खा लिया है?" पिताजी ने कहा—"मेरे पास बात करने के लिये अधिक समय नहीं है, ऐसे ही देर हो गई है। मैं बड़े भाई के पास अनुमति के लिये जा रहा हूँ, आप उसको लेकर ईश्वर पाठशाला में चले जाइये।" यह कहते हुये द्वितीय वाक्य-विनिमय का अवसर न देते हुये बाहर निकल गये। माँ, बूआ जी सभी अवाक्। फूफा जी ने माँ से कहा—"सुरुचि! चलो देखूँ क्या व्यापार है?" माँ शीघ्रतापूर्वक स्नान करके छोटे भाई गौर को बूआ जी के पास देकर चली गयीं। मैं भी उस समय बूआ जी के पास रह गयी। समस्त कार्य कलाप ही मानों एक सुस्वप्नवत् चलने लगे।

लगभग डेढ़ बजे माँ और पिताजी बाबाजी महाराज की कृपा प्राप्त कर लौट आये। पिता और माता से मैंने चर्चा सुनी—पिताजी तो ताऊ जी के पास अनुमति के लिये चले गये, इस ओर माँ जब ईश्वर पाठशाला पहुँचीं तो उस समय लगभग ११ बजे थे। माँ के पहुँचने के बाद अनेकों व्यक्ति पूछने लगे, आप क्यों आयीं हैं ? माँ ने कहा—दीक्षा लेने आयी हूँ। कोई हास्यपूर्ण स्वर में तो कोई संवेदना के स्वर में बोला—इस समय तो और दीक्षा नहीं होगी, तीन बार हो चुकी है। अच्छा, यदि आप आयीं ही तो इतनी देर करके क्यों? इत्यादि प्रश्न करने लगे। माँ ने कहा—मैं यह सब नहीं जानती हूँ, दसरी ओर पिताजी भी ताऊ जी से अनुमति लेकर आ

पहुँचे। उसके बाद मस्तक मुंडन कराकर स्नान करेंगे। वे जिस समय मस्तक मुण्डन करा रहे थे, उस समय वे भी इसी प्रकार नाना मन्तव्य सुनने लगे—अरे! ये क्यों मस्तक मुण्डन करा रहे हैं आज तो और दीक्षा नहीं होगी, कल भी होने का कोई उपाय नहीं है। कारण, आज ही रात में बाबा जी महाराज चिटागङ्ग मेल से कलकत्ते चले जायेंगे। इस प्रकार बहुत लोगों के अनेक मन्तव्यों से भी पिताजी के विश्वास में शिथिलता नहीं आयी। पिताजी के मन में दृढ़ विश्वास था कि मैं जब राजी हूँ तो दीक्षा मेरी होगी ही। इतनी चर्चाओं में भी यह विश्वास अडिग बना रहा। झुक नहीं सका। अनेक लोगों की अनेक बातों से पिताजी विचलित नहीं हुये। अविचलित भाव से ही मस्तक-मुण्डन, स्नानादि कार्यों से निवृत्त होकर तैयार हो गये। दीक्षा की अन्यान्य आवश्यक वस्तुयें गुरुभाई ने संग्रह कीं। यथा समय शुभ क्षण में माता-पिता की दीक्षा का कार्य भी सम्पन्न हुआ। तत्पश्चात् इस विषय में एक आश्चर्य जनक घटना सुनी थी।

पिताजी तो तैयार होकर आ गये। इसके बाद बात हुई कि ऐसे असमय में विशेषकर जब कि बाबा जी महाराज दीक्षा देकर श्रान्त-क्लान्त हो चुके हैं और आज ही रात्रि में गाड़ी से यात्रा भी करेंगे, कौन बाबा जी महाराज से दीक्षा देने के लिये अनुरोध कर सकता है? यही एक बड़ा प्रश्न था। सभी भाई दा के पास जाकर बोले—शिशिर दा तुम्हीं जाकर बोलो। भाई दा ने उत्तर दिया—मेरे स्वजन हैं, इसलिये मैं नहीं बोलूगाँ। भाई दा हमेशा से ही बाबाजी महाराज के विशेष स्नेह पात्र थे। अनेक प्रकार की चर्चाओं के बाद यह निश्चित् हुआ कि हम लोगों के गुरुभाई चिर ब्रह्मचारी निवारनदा जाकर अनुरोध करेंगे। सभी ने निवारनदा को डाँट खाने के लिये तैयार हो जाने को कहा। निवारनदा शङ्कित मन से धुकधुकीपूर्ण चित्त लिये हुये बाबा जी महाराज के पास जाकर अतिभय एवं विनीत भाव से बोले, "बाबा! बरकान्ता स्कूल के वही हेडमास्टर और उनकी स्त्री दीक्षार्थ सर्व प्रकार प्रस्तुत होकर बाहर खड़े हैं।" बाबा जी महाराज ने प्रश्न किया, "क्या? कौन?" निवारनदा ने कहा, वे ही लम्बे गोरे दुबले-पतले हेडमास्टर। वे दीक्षा के लिये तैयार होकर आये हैं। बाबा जी महाराज अत्यन्त प्रसन्न भाव से बोले, "उससे क्या हुआ, इसी समय भेज दो।" निवारनदा तो अवाक् रह गये-कहाँ तो डाँट खाने के लिये तैयार होकर आये थे और कहाँ उसके बदले स्नेह मिश्रित व्यवहार। किन्तु दूसरे ही क्षण उसका मुख फिर मलिन हो गया। बाबा जी महाराज ने उसकी ओर लक्ष्य करके पूछा, "क्या हुआ है?" निवारनदा—"बाबा! माला, कण्ठी, गोपीचन्दन तो नहीं है। आज आप चले

जायेंगे, विशेषकर आज दीक्षार्थीगण भी और कोई नहीं है, यह समझकर मैंने सब समाप्त कर दिया है। थैली को झाड़कर साफ करके आपके इस तरफ़ रख दी है।" बाबा जी महाराज बोले—"हाथ डालकर देखो न! है कि नहीं।" निवारनदा—"नहीं बाबा, मैंने स्वयं ही झाड़कर साफ करके रखी है।" निवारनदा ने फिर से वही प्रत्युत्तर दिया। उस समय बाबा जी महाराज ने डाँटते हुये कहा, "मैं कह रहा हूँ, तुम देखो।" तब निवारनदा ने थैली के अन्दर हाथ दिया और आश्चर्य चकित रह गये। ठीक दो माला और दो कण्ठी। निवारनदा अवाक् ही नहीं प्रत्युत् एकदम मूक हो गये। बाबा जी महाराज ने कहा—"अमुक स्थान पर गोपीचन्दन भी है—जाओ, और देरी मत करो; शीघ्र ही उनको भेज दो।" कितना अद्‌भुत? कितना आश्चर्य! इतना कहकर हम लोग चुप हो जाने के लिये बाध्य हो जाते हैं। इन सब घटनाओं की व्याख्या वैज्ञानिक जगत् आज क्या दे सकता है? इसका कोई भाष्य नहीं है और न ही कोई व्याख्या! देखने के लिये है केवल उनका खेल, और समझने के लिये है उनकी कृपा।

किस प्रकार दीक्षा हुई अथवा दीक्षा के समय क्या हुआ कुछ भी सुना नहीं। फिर भी दीक्षा के बाद बाबा (पिता) को चरण-स्पर्श करने की अनुमति दी थी और दिया था अन्तर्यामित्व का परिचय। दीक्षा के बाद पिताजी बोलने वाले थे—बाबा! मैं शाक्त हूँ इत्यादि। बाबा जी महाराज ने हाथ हिलाकर मना करते हुये कहा—"मैं सब जानता हूँ।" उसके बाद बाबा ने प्रणाम करके मन ही मन चरण-स्पर्श करने की अनुमति माँगी। प्रणाम करके उठते ही देखी सम्मति सूचक दृष्टि भङ्गी। माता-पिता, देवजनवन्दित उन चरणों का स्पर्श करके धन्य हो गये।

गुरुदेव, क्या अद्‌भुत तुम्हारी कृपा है। डर लगता है, इन सब कृपा की कथाओं का प्रकाश करते हुये तुम्हें कहीं छोटा न बना दूँ। अवश्य यह भी जानती हूँ कि मेरी कलम से तुम्हारे छोटे-बड़े होने का माप नहीं हो सकता—जो असीम है, वह असीम ही रहेगा, ससीम लेखनी केवल उनका आंशिक वर्णन ही कर सकती है। क्षुद्र शिशु जैसे चाँद पकड़ना चाहता है, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारे कृपा-कण को लिखना चाहती हूँ। यह धृष्टता है मैं नहीं समझती हूँ, तब भी इतना समझती हूँ कि धृष्टता तुम्हारे निकट ही की जा सकती है। एकबार जब आश्रय दिया है, गोद में लिया है, सस्नेह आह्वान किया है, अब छोड़ नहीं दोगे, फिर भी खरा सोना बनाने के लिये तपाकर तो स्वीकार कर सकते हो। अनन्त काल से तुम्हारी यह लीला चली आ रही है—चलती रहेगी।

माता-पिता कृपा प्राप्त करके मध्याह्न प्रसाद पाकर जब वापिस आये, घड़ी में डेढ़ बजे थे। उस समय गौर ४ मास का शिशु था, वह इतने समय तक माँ को छोड़े हुये था। बूआ जी माँ को इस बात पर कुछ कहने लगीं। माँ (शोभा माँ की माँ) ने इस बात पर कहा—आश्चर्य! गौर की बात मैं भूल ही गई थी। आज ध्यान आता है कि यही स्वाभवाकि था। शिशु चुसनी लेकर उतने समय तक ही भूला रहता है, जब तक माँ को नहीं पाता है। माँ को पाने के बाद चुसनी को छोड़कर माँ की गोद में ही आ जाता है, उस समय उसको क्षुद्र चुसनी की बात और ख्याल नहीं आती। माँ फिर से प्रयोजन होने पर जब गोद से उतार देतीं हैं, उसी समय हम लोग चुसनी खोजते हैं और चुसनी को लेकर फिर खेल में मतवाले हो जाते हैं। इसीलिये माँ को भी बाबा जी महाराज की गोद से उतरते ही चुसनी की बात ध्यान में आ गई।

श्रेय प्राप्ति न होने तक सभी वस्तुओं का अवसान हो जाता है। समय कम और अधिक, इसी को लेकर प्रश्न उपस्थित होता है। पिताजी वापस आते ही कष्टपूर्ण स्वर में बोले, "बाबा जी महाराज आज रात में ट्रेन से कलकत्ते चले जायेंगे" उसी दिन संध्या के बाद फिर बाबा जी महाराज को देखने गया था। उस समय सभी जाने के लिये व्रस्यस्त थे। बाबा जी महाराज भी जाने के लिये तैयार होकर उसी खाट पर बैठे थे। इस बार उनकी अनुमति लेकर पाद-स्पर्श किया। एक गुरुभाई ने बाबा का प्रसाद लाकर हम लोगों के हाथ में दिया। कितना अद्भुत स्वाद था। प्रसाद क्या वस्तु है, उसी दिन पहले समझा था—इसका ही नाम संभवतः महाप्रसाद, अमृत इत्यादि है। उसके बाद व्यथित चित्त से घर लौटा। रास्ते में किसी के साथ कोई बात नहीं की, हृदय पर मानो पत्थर रखा हुआ था। इतनी देर का इतना आनन्द शोरगुल सब मानों छाया की तरह विलीन होने लगा। स्वप्न जैसे टूट गया। ऐसी अवस्था हो गई।

पिताजी हम लोगों को घर पहुँचाकर बाबा जी महाराज को स्टेशन पर गाड़ी में बैठाने चले गये। अवसन्न चित्तसे जब वापस लौटे उस समय रात्रि के लगभग १२ बजे थे। हम लोग भी पिताजी के आगमन की प्रतीक्षा में थे। पिताजी आकर केवल एक ही बात बोले-"चले गये।" किसी के मुँह में बात नहीं थी, सब चुपचाप जैसे सुषुप्ति की गोद में सो गये हों। व्यापार किन्तु वह नहीं था, प्रत्येक व्यक्ति व्यथा से म्रियमाण होकर निर्वाक् हो गया था। कुछ क्षण इसी प्रकार बीत जाने पर, अकस्मात् पिताजी ने कहा—अच्छा प्रियबाबू! कल प्रातःकाल उठकर किसको पहले प्रणाम करूँगा? मुख से कहता तो हूँ कि माँ (काली) बाबा एक ही हैं, बुद्धि द्वारा यह

समझता भी हूँ, किन्तु अंतर में द्वन्द छिड़ा हुआ है। इसका क्या उपाय है? इस समस्या का समाधान कौन करेगा? असमय सभी सहा जाता है, हम लोग भी कुछ देर बाद धीरे-धीरे सो गये।

२९ ता: के उष:काल में पिताजी की पुकार से नींद टूट गई। पिताजी ने कहा—प्रियबाबू! एक अद्‌भुत आनन्दपूर्ण स्वप्न देखा है। मैं और फूफा महाशय दोनों ने एक साथ ही प्रश्न किया-"क्या? क्या?" पिताजी ने कहा-"रात्रि में सोने के समय बाबा जी महाराज के निकट प्रार्थना की थी, मेरी समस्या का समाधान कर दो। मैं दो नौकाओं में पैर रखकर नहीं रह सकता। माँ (काली) एवं बाबा एक हैं—यह मुझे समझा दो। इन सभी प्रार्थनाओं के बाद मैं किस समय सो गया, नहीं जानता। स्वप्न में देखता हूँ कि बाबा जी महाराज और माँ काली पास-पास स्थित हैं। मस्तक मुण्डित किये हुये मैं नीचे और ऊपर श्री श्री राधा-कृष्ण। मैं लगातार देख ही रहा था कि मैंने देखा—वे सब एक दूसरे के अन्दर परस्पर मिल रहे हैं। बाबा जी महाराज माँ काली में, माँ काली बाबा जी महाराज में; फिर ये दोनों राधा-कृष्ण में और मैं भी इनमें। मानो मेरी पृथक् सत्ता ही नहीं रह गई। कुछ देर तक इसी तरह चलता रहा, इसके बाद सब बाबा जी महाराज के श्री अंग में मिल गये। हँसते हुये बाबा खड़े हैं, मैं नीचे स्थित हूँ। मैंने समझा—सभी एक हैं। प्रिय बाबू! मुझे और कोई सन्देह नहीं है, संशय नहीं है, मैं राजा हूँ......मैं राजा हूँ।" पिताजी का वह आनन्द से विह्वल मुख मुझे आज भी याद आ जाता है। हम तीनों व्यक्ति ही एक स्वर में 'बाबा जी महाराज की जय' बोल उठे। इस प्रकार मैंने बाबा जी महाराज को द्वितीय बार देखा और उनकी कृपा प्राप्त की।

उसी दिन संध्या समय हम लोग घोड़ा गाड़ी से बरकान्ता वापिस लौट आये। किन्तु व्यथित होते हुये भी उसके अन्दर जय (सफलता) का एक आनन्द था। बरकान्ता में भी यह खबर फैल गई थी कि घोर शाक्त हेडमास्टर बाबू ने वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया है। वापस लौटने के पूर्व पिताजी ने अतुल बाबू से एक चर्चा सुनी थी, वही उन्होंने घोड़ा गाड़ी के अन्दर हम लोगों को सुनाई। हम लोगों ने जिस दिन नाम दीक्षा पाई, उसी दिन संध्या समय बाबा जी महाराज मयनामती पहाड़ पर घूमने गये थे। अन्यान्य शिष्यों के साथ अतुल बाबू को भी उनके साथ जाने का सुयोग प्राप्त हुआ। बाबा जी महाराज गाड़ी से उतर कर पैदल टहल रहे थे। ऐसे समय अतुल बाबू ने धीरे-धीरे प्रश्न किया—"अच्छा बाबा, आज सबके बाद जिन दो व्यक्तियों को दीक्षा दी थी, उनका आधार कैसा है?" बाबा-"ये जो स्वामी-

स्त्री? मास्टर? गोरे और कृश शरीर वाले, इनके विषय में पूछ रहे हो?" अतुलदा ने कहा—हाँ बाबा। बाबा जी महाराज ने मधुर-मधुर हँसते हुये कहा-"खूब अच्छा आधार है।" आगे वे बोले-"इस शरीर ने तो तुम्हारे कितने जनों को ही नाम दीक्षा दी है, इनके मध्य यदि एक व्यक्ति भी वास्तविक रूप में मनुष्य बन सका, तभी मेरा परिश्रम सार्थक हो सकेगा।" बाबा इस प्रसंग को कहते-कहते रो पड़े। हम लोगों में से किसी के भी नेत्र शुष्क नहीं थे।

हम लोग ४ बजे बरकान्ता वापिस लौट आये। मानों देश को जीतकर जयी होकर वापस लौट रहे हों। पहले-पहले यह आलोचना समवयस्क लोगों के बीच खूब होती थी, उसके बाद सभी प्रायः भूल गये। स्मृति में विशेष रूप से रह गया उनके द्वारा प्रदत्त 'नाम', वह दोनों ही समय आसन पर बैठकर जपती थी। फिर भी मैं यह नहीं कह सकती कि मैं खूब निष्ठा सहित करती थी एवं बहुत कम समय ही जपती थी। इस प्रकार करते हुये एक दिन के बाद दूसरा दिन क्रमशः कटने लगे। आश्विन् मास में पूजा की छुट्टी में कोण्डा रवाना होने के दिन उन्होंने विशेष रूप से हम लोगों की रक्षा की थी, वही घटना आज बोलूँगी। गुरु (शिष्यों के) साथ-साथ ही रहते हैं, यह इस घटना के माध्यम से विशेष रूप में समझ में आ जायेगा। यद्यपि यह घटना शुक्ल पक्ष के दूज (द्वितीया) के चाँद की तरह ही रेखा मात्र है, फिर भी द्वितीया का चाँद जैसे पूर्णिमा का आभास कराता है, उसी प्रकार इस घटना ने भी संभवतः भविष्यत्, की पूर्णलीला का आभास ही दिया था।

आश्विन मास—आज महालया का दिन था, स्कूल में छुट्टी थी। हम लोग सभी आनन्द में मतवाले थे, क्योंकि माँ दुर्गा की पूजा, स्कूल की छुट्टी, उसके ऊपर से आज ही हम लोग घर की ओर रवाना हो रहे थे। उस समय हम सभी शरतकालीन हलके मेघों की तरह मानो उड़-उड़ कर इतस्ततः घूम रहे थे। कब रवाना होंगे, जैसे अधीर हो रहे हों। मॉर्निङ् स्कूल के बाद बरकान्ता का स्कूल बन्द हो गया। हम लोग खा-पीकर, कपड़े पहनकर रवाना होने के लिये बिल्कुल तैयार हो गये। कुमिल्ला जाकर ११ बजे सिराजगंज मेल पकड़ना होगा। मेरे पिताजी हर समय अत्यन्त आतुर चित्तवाले व्यक्ति थे। इसलिये हम लोग ८ बजे घोड़ा गाड़ी पर सवार हो गये। गाड़ी आकर घर के दरवाजे के सामने खड़ी थी। यह पहले से निश्चित् हो गया था कि घोड़ा गाड़ी जब सरोवर-तट से होते हुये चौड़े रास्ते पर पहुँचेगी, तभी पिताजी और सबुज गाड़ी पर चढ़ेंगे। क्योंकि घर जाने के समय विदाई देने के लिये मास्टर बाबू तथा अन्यान्य ऑफिसर खड़े होकर उनके साथ वार्तालाप कर रहे थे।

मैं, माँ, हेना, संध्या, गौर (जिसकी उम्र उस समय ७ मास की थी) घोड़ा गाड़ी पर चढ़कर बैठ गये। पूंजा की छुट्टी में घर जा रहे थे, इसलिये ट्रंक एवं बिस्तरे से गाड़ी पर बोझ था। तालाब का तटवर्ती रास्ता जिस जगह बड़े रास्ते से मिला हुआ था, उस जगह ढ़ाल थी। हमेशा घोड़ा गाड़ी इस रास्ते से ही बड़े रास्ते पर जाती थी। उस दिन भी ढ़ाल पर चढ़ने जा रही थी, किन्तु अत्यधिक बोझ के कारण गाड़ी झोंक सँभाल न सकी और तिरछी होकर गिर पड़ी। इसके साथ ही साथ होने लगी एक चित्कार! मैं, हेना, संध्या किसी तरह कूदकर बाहर निकल गये। किन्तु माँ की गोद में ७ मास का शिशु गौर था। माताओं के पैर के पास जिस तरह का एक बड़ा ट्रंक रखा जाता है, वैसा ही एक ट्रंक माँ के पैर के पास रखा था। माँ निकल नहीं सकीं, इसके अतिरिक्त गाड़ी के हिल जाने से गौर माँ की गोद से पैर रखने की जगह गिर पड़ा और इस स्थान का ट्रंक हिल जाने से शून्य में उठ गया, किन्तु आश्चर्य, ट्रंक शून्य में ही रह गया। डॉक्टर बाबू ने तुरंत ही गाड़ी के अन्दर से गौर को गोद में उठा लिया और ट्रंक भी धड़ाम से गिर पड़ा। इसके बाद माँ भी निकल आयीं। अधिक कहने से क्या? इतनी बड़ी दुर्घटना में भी हम लोगों में से किसी को एक खरोंच तक नहीं आयी। एकत्रित जनसमुदाय बोल उठा—सचमुच, हेडमास्टर बाबू! आपलोगों के गुरुदेव (आप लोगों के साथ) हैं। आप धन्य हैं कि ऐसे गुरु का आश्रय लिया है। ऐसी अलौकिक घटना और नहीं देखी। मानो इस घटना से विज्ञान को भी हार माननी पड़ी। मध्याकर्षण की शक्ति भी इस बड़े ट्रंक को नीचे नहीं गिरा सकी, क्योंकि ऊपर की शक्ति उसको आकर्षित करके रखे हुये थे। देखते ही देखते चारों ओर यह खबर फैल गई। पास-पड़ोस के सभी हम लोगों को देखने चले आये। सबका एक ही स्वर था—गुरुकृपा से ही गौर की रक्षा हुई। अद्भुत!!

इतनी बड़ी दुर्घटना होने के बावजूद पिताजी ने कहा—आज ही मैं रवाना होऊँगा। आज की यात्रा ही मेरी शुभ-यात्रा है। स्कूल के दफ्तरी विपिनदा से कहा—जाओ टैक्सी ले आओ। सभी की यह धारणा थी कि अन्ततः आज पिताजी रवाना नहीं होंगे, किन्तु रोकने की शक्ति भी उनकी नहीं थी। जो अघटन घटित हुआ था, उसकी वजह से गुरुशक्ति के ऊपर विश्वास करना ही पड़ता है, विश्वास न करने का कोई उपाय ही नहीं। इसके बाद यथासमय टैक्सी आ गई। हम लोग सिराजगंज मेल से रवाना होकर यथासमय घर पहुँच गये। इसके बाद की घटना गतानुगतिक है।

पूजा के आमोद आह्लाद के बाद स्कूल खुलने के पूर्व दिन फिर बरकान्ता वापिस आ गई। साधन-भजन भी पूर्व की भाँति ही अर्थात् नाम के लिये कुछ करती

थी या नहीं करती थी। किन्तु ये सुख के दिन स्थायी नहीं हुये। अकस्मात् एक दिन एक बड़े आघात से मेरी चेतना लौट आयी (मुझे ज्ञान मिल गया।) परवर्ती घटना और नहीं लिखी जातीं।

कार्त्तिक मास की २३ वीं तिथी को लगभग ८ बजे के समय देखा कि पिताजी समाचार पत्र लेकर घर के अन्दर प्रविष्ट हुये—आँख मुख लाल—समाचार पत्र के साथ ही ठाकुर घर में घुस गये, लेकिन घुसने के समय इशारे से माँ को बुलाया। माँ रसोईघर में व्यस्त थीं, फिर भी तुरन्त आकर ठाकुर घर में घुस गईं। हम लोग कुछ भी नहीं समझ पा रहे थे, फिर भी हम लोगों ने इतना तो निश्चय कर ही लिया था कि अतिप्रियजन की वियोगजनित व्यथा अवश्य है। यह पिताजी के रुदन से ही समझ में आ गया था। किन्तु, वह कौन था? यह न जानकर हम लोग. भी ठाकुर-घर के बाहर बैठे-बैठे रो रहे थे। किसके लिये? यह नहीं जानते थे, संभवतः पिता-माता के अश्रुओं को देखकर। बाहर बैठे रहने के बावजूद इनका व्याकुल-रुदन कानों में पड़ रहा था। हम लोग भी रोते ही जा रहे थे। हृदय मानो विदीर्ण हुआ जा रहा था। किसके लिये रो रही हूँ, यह विचार भी उस समय नहीं था। लग रहा था कि कोई अत्यन्त प्रिय व्यक्ति नहीं रहे। कितना क्षण इस प्रकार व्यतीत हो गया, यह मैं नहीं जानती, उसके बाद पिताजी ने ठाकुर-घर में मुझे भी बुला लिया। ठाकुर-घर में जाने के बाद माता-पिता की अवस्था देखकर और रोना आने लगा। पिताजी मुख से कुछ नहीं कह पा रहे थे, केवल हाथ से संकेत करके समाचार पत्र का एक स्थान दिखा दिया। समाचार पत्र में देखा कार्त्तिक की २२ ता० (बंगला) को श्री बाबा जी महाराज ने महाप्रयाण कर लिया। उस समय की अवस्था भाषा द्वारा नहीं समझाई जा सकती, यह समझकर चुप हो गई। अति शोक पत्थर बना देता है, अल्प शोक व्याकुल कर देता है। मेरी यह अवस्था वे ही समझ सकते हैं, जो ऐसे आघात से परिचित हैं। स्थूल जगत् के स्थूल जीव को ऐसे आघात से परिचित होना ही पड़ता है, क्योंकि स्थूल प्राप्ति का अवसान है, वह जितने काल तक भी स्थायी क्यों न हो—अस्थायी है। दुःख को भाषा के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता, बुद्धि के द्वारा समझाया नहीं जा सकता। यह वाचाल को भी मूक बना देता है। इसके बाद तीन दिनों तक मैंने माता-पिता के साथ हविष्यान्न ग्रहण किया था। किन्तु बाबा जी महाराज के इस महाप्रयाण ने मुझे न जाने कैसा कर दिया था। खेलकूद आमोद आह्लाद सभी करती थी, किन्तु कुछ भी मुझे वास्तविक आनन्द नहीं दे

पाता था। केवल एक ही बात में आलोड़ित होती थी कि बाबा जी महाराज को देखकर इतना आनन्द पाती थी, वे चले कहाँ गये? किसी से यह प्रश्न नहीं करती थी, इसीलिये यह पश्न मेरे मन में स्थिर हो चुका था। आज अवश्य समझती हूँ कि इनका जन्म नहीं है, मृत्यु भी नहीं है। जन्म-मृत्यु का यह प्रहसन उनकी लीलामात्र है। मर्त्यलोक में इनका आगमन अपने लिये नहीं, प्रत्युत जीव के उद्धार के लिये है। ये लोग जिस प्रकार इच्छा मात्र से स्वयं को प्रकाशित करते हैं, उसी प्रकार अप्रकाशित करते हैं। हम लोग साधारण जीव हैं, उनकी प्रकाशित (व्यक्त) अवस्था को ही आनन्द सहित ग्रहण करते हैं। एक अवस्था में अत्यन्त उल्लसित हो उठते हैं, इसीलिये दूसरी अवस्था में विह्वल हो जाते हैं। जो ज्ञान सुख-दुःख में समान होता है, वह ज्ञान कहाँ है? वह ज्ञान भी है, चेष्टा करते जाओ, पाओगे भी। अभ्यास करो, अभ्यास ही क्रमशः स्वभाव में परिवर्तित हो जाता है। यदि वे लोग एक बार स्वतः प्रवृत्त होकर अनुग्रह करते हैं, तो फिर ओझल नहीं हो जाते। यह मेरा स्वतः अनुभूतिलब्ध ज्ञान है।

प्रथम दर्शन एवं द्वितीय दर्शन मैंने पाया था। प्राप्त वस्तु खोयी जा सकती है एवं खो भी जाती है। इसीलिये दो बार भी उनको पाकर खो चुकी हूँ, किन्तु तृतीय दर्शन मैंने पाया नहीं—उन्होंने कृपा करके दिया है। यह दर्शन आज भी नहीं हटाया है। वे समभाव से मेरे निकट विद्यमान हैं। यह दर्शन मैंने अपनी चेष्टा से नहीं प्राप्त किया, प्रत्युत् स्वतः प्रवृत्त होकर प्रदत्त उनकी कृपा या दान है। यह कृपा उन्होंने क्यों की, यह तो मैं नहीं जानती, फिर भी इतना जानती हूँ कि महत् का स्वभाव कृपा करना ही है। जिस समय कृपा करते हैं, उस समय पात्र-अपात्र का विचार नहीं करते, क्योंकि अपात्र को पात्र बनाने की क्षमता भी उन्हीं में है।

मैंने महत् की कृपा पायी है। लोक चक्षु के अन्तराल में भी जो सतत् विद्यमान हैं, उन्हीं परम दयालु मेरे गुरुदेव को तुम लोग स्मरण करते रहो। यह मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनकी कृपा से तुम लोग उनको प्राप्त कर सकोगे।

वे आज भी विद्यमान हैं, जैसे मैं हूँ और तुम हो। मेरा तुम्हारा अवसान हो जायेगा, किन्तु उनका अवसान नहीं। कारण, आरम्भ कहाँ है? युग युगान्तर से यह खेल वे खेले जा रहे हैं एवं खेलते रहेंगे, क्योंकि युग युगान्तर से ही वे विद्यमान हैं एवं विद्यमान रहेंगे। यदि कोई उनके प्रति साधारण मनुष्य-बुद्धि आरोपित करते हैं, तो यह उनके संकीर्ण मन का ही परिचायक है। इससे उनकी कोई हानि-वृद्धि नहीं होती। वे इन समस्त भावों से अतीत हैं।

यदि उनको इष्टबुद्धि से सर्व प्रथम आसन पर विराजमान करके तत्पश्चात्

हृदय में लाकर एक हो सकते हो, तभी परमगति लाभ कर सकते हो। उनका कोई लाभ-नुकसान नहीं, किन्तु उनके स्मरण से मेरा तुम्हारा परम लाभ है। इसीलिये यह सब मिलाकर उनके सुमिरण के लिये है। उनको पाने के लिये मन प्राण समर्पित करती हूँ। हम लोगों की चेष्टा उनकी कृपा है।

धन्य गुरु देव! धन्य है तुम्हारी कृपा! मेरे ऊपर जैसी कृपा की है अपने आश्रितजनों एवं शरणागतों के ऊपर ऐसी ही कृपा करो—यही तुम्हारे चरणों में प्रार्थना है।

जय गुरूजी–जय जय जय।

ॐ तत्–सत्–ॐ

***

कृपामयी श्री श्री माँ

मातृवाणी

(१) गन्तव्य स्थान में न पहुँचने तक चलने के रास्ते में विश्राम न लेना। श्रान्त होने से धीरे-धीरे चलना, किन्तु रुको नहीं। एक पैर चलने से एक पैर ही आगे बढ़ना है, ऐसा तुम लोगों को बार-बार कहा है। वाक्य में विश्वास रखना। २१-५-५३*

(२) सुख और दुःख ये दो भाई हैं; गाड़ी के पहिये की तरह घूम रहे हैं। इनमें कोई भी स्थायी नहीं है; इसे जानकर सुख में उद्वेलित और दुःख में म्रियमाण नहीं होना। २८-५-५३

(३) हम लोगों के शरीर विभिन्न होने पर भी हमारा लक्ष्य एक है, और यह लक्ष्य "वही" है। इस लिये मन और प्राण से हम लोगों को एकमन, एकमत, एकलक्ष्य होना पड़ेगा—इसे हर समय हृदय में रखने की चेष्टा करना। ४-६-५३

(४) जीवन समझो कि फेन और बुदबुदे के समान नश्वर है। दूसरे के दुःख में करुणा प्रकाश और अपनी विपद् में साहस-यह दो ही जीवन में प्रस्तर-खण्ड की तरह स्थायी होते हैं, इसे जानना। ११-६-५३

(५) लोगों द्वारा तुम्हारी निन्दा करने पर इस तरह अपनी जीवन यात्रा निर्वाह करते चलो कि कोई भी उनकी बात पर विश्वास न करें। अर्थात् ऐसे साधु भाव से जीवन यात्रा निर्वाह करते चलो कि उसे देखकर साधारण लोग तुम्हें निन्दा का अतीत कह कर मानेंगे। निन्दा करने वाला भी लज्जा पायेगा। १८-६-५३

(६) हम लोग किस तरह से अपना जीवन व्यतीत कर सकते हैं उसे महाजनों की जीवनी हमें स्मरण करा देती है। २५-६-५३

(७) बिना पैसे से जो कई एक मुल्यवान द्रव्य दिखाई पड़ते हैं, सज्जन उनमें से अन्यतम हैं। इन्हें देखने से पैसे का खर्च नहीं होता है, इसी के लिये फलाकांक्षा त्यागते हुए उनके पास जाना उचित है। तुम्हारा जो श्रेय है तुमसे वह ही अच्छा समझेंगे—इस विश्वास को सर्वदा रखना। २-७-५३

---

* उपर्युक्त अंक अंग्रेजी तारीख के हैं, जिनमें मातृवाणी को पाया गया।

(८) जीवन का सम्मान प्रेम करने में है, प्रेम प्राप्त होने में नहीं। दान में है, प्रतिग्रह में नहीं। सेवा करने में है, सेवा ग्रहण करने में नहीं—इस बात को स्मरण रखने की चेष्टा करना। १३-८-५३

(९) बात कहनी अच्छी है, लेकिन चुप रहना और भी अच्छा है। सबकी ही बात सुनो, किन्तु किसीको कुछ न बोलो। मितभाषण बुद्धिमत्ता का निदर्शन है ऐसा समझना। २०-८-५३

(१०) अपने को सुन्दर और निर्मल करने के लिये सतसंग करना खूब अच्छा है। सद्ग्रन्थ-पाठ से सतसंग का कार्य होता है—इसे समझना। रोज ही कुछ-कुछ सद्ग्रन्थ पाठ करने की चेष्टा करना। मेरा आशीर्वाद लेना।

३१-२-५३

(११) ईश्वर जब जिस अवस्था में रखते हैं, हृदय में सन्तोष भाव रखने की चेष्टा करो। क्योंकि तुम्हारा काम होना चाहिये। आपाततः (निकटका) प्रेयः से स्थायी श्रेयः। स्मरण रखना प्रेयः आपाततः सुखदायी है, श्रेयः चिरशान्ति देनेवाला है। "प्रेयः" को पकड़ कर चलने से "श्रेयः" नहीं मिल सकता है, किन्तु "श्रेय" को पकड़ कर चलने से "प्रेयः" जरूर आयेगा।

१०-९-५३

(१२) दैनन्दिन कर्म की सूची रखना अच्छा है। इससे अपना दोष अपने आप पकड़ पाते हैं। बुद्धिमान व्यक्ति इससे संशोधन का अवकाश पाते हैं। "पराये का जो दोष देख कर करते हो रोष, पहले देखो अपने में है या नहीं वही दोष।" १७-९-५३

(१३) माँ की पूजा आ गई है; प्रत्येक अपने को तैयार करो ताकि हृदय-आसन पर वे स्थान ले सकें। अपना आसन तैयार रक्खो जिससे आसन के अभाव से माँ को लौट जाना न पड़े। माँ को अपने हृदय-मन्दिर में कैद करने की चेष्टा करो। तुम्हारी चेष्टा उनका आशीर्वाद है। ८-१०-५३

(१४) आना और जाना—यह चिरन्तन रीति—जब तक मनुष्य अमृतत्व लाभ नहीं करता है, उसका विराम नहीं है, विश्राम नहीं है। इसीलिये आश्रम किसी समय जीवरूप फल फूल से सुशोभित हो उठता है, फिर इसके अभाव से शीत काल के वृक्ष की तरह संकुचित हो जाता है। तुम लोग अमृतत्व लाभ करके इस नियम का व्यतिक्रम कर दो—यही इच्छा करते हैं। जहाँ पर सिर्फ मिलना ही है, खोने को कुछ नहीं रहता। २९-१०-५३

(१५) दीवाली बीत गई। बाहर बहुत से दीप जलाने का नाम ही क्या दीवाली है? मेरे जानने में अन्तर दीप जलाने से ही दीवाली का उत्सव सार्थक है। कामना वासना रूप अन्धकार वस्तु को विसर्जित कर मातृरूप दीपवर्त्तिका के सहारे से तुम सब अपने अन्तर देवता को जगाने की चेष्टा करते चलो।

११-११-५३

(१६) बाबा का आविर्भाव और उनका तिरोभाव दोनों ही उनकी लीला मात्र है। साधारण जीव प्राप्ति में आनन्द, अप्राप्ति में दुःख बोध करते हैं। आज बाबा का तिरोधान उत्सव है। किन्तु बाबा आज ही हमारे सामने आविर्भूत हो सकते हैं अगर हम अपने को तैयार कर सकें। वे आज भी समभाव से ही सर्वत्र विराजमान हैं। अगर तुम लोग चेष्टा करो, तो उनकी कृपा से उनके इस कथन की सत्यता की उपलब्धि कर सकोगे यही मेरा विश्वास है।

१९-११-५३

(१७) रास के उत्सव की समाप्ति हुई। इस रास उत्सव में गोपियों ने कृष्णमय जगत् देखे थे। तुम लोग भी अगर चेष्टा करो तो उनको सर्वत्र देख सकोगे। तुम उनको लाभ करके एकान्त भाव से उनके ही हो जाओ—इसी की इच्छा करते हैं।

२६-११-५३

(१८) सत्य को आश्रय करके रहना। इससे सत् चित् आनन्द को जान सकोगे। सत्याश्रयी होने के लिये ही सत्संग है। इसके अभाव में सद्ग्रन्थ-पाठ आवश्यक है इसे जानना।

११-१२-५३

(१९) सत्याश्रयी हो जाने के लिये नाना बाधा-विघ्न आ सकते हैं। वीर की तरह अगर वे सब बाधा और विघ्न अतिक्रम कर सको तभी वीर हो सकोगे और हम वीर की जननी कह कर आनन्द लाभ कर सकेंगे।

२६-१२-५३

(२०) किसी भी अवस्था में विचलित होना विज्ञ व्यक्ति का कार्य नहीं है। विपद् में धैर्यहीन होने से विपद् घट नहीं जाती है। बुद्धिमान व्यक्ति विपद् में अविचलित रह कर धैर्य के साथ कर्म करके कर्म-क्षय करते हैं—इसे समझना।

७-१-५४

(२१) सुकर्म और कुकर्म इन दोनों को फल भोग द्वारा ही क्षय किया जाता है। किसी प्रकार के भी कर्म को लेकर उनके पास पहुँचना नहीं हो सकता। इसलिये कर्म से ही कर्म का क्षय करने को यत्नवान् या यत्नवती हो।

सुकर्म करने से श्रेयः मिलेगा। जल्दी-जल्दी उनके पास पहुँचने का पथ प्रशस्त होगा। इसे जान कर सुकर्म करते जाओ—यही इच्छा करते हैं।

१४-१-५४

(२२) अपने मन को शान्त और संयत रख सकने से बाहर के संघात से विचलित नहीं होना पड़ता। साधन में अग्रसर होने के लिये सब से पहले अपने मन को तैयार करना उचित है। 'अच्छा नहीं लगता' इस भाव को हृदय से दूर करके उनके भाव को हृदय में बैठाओ। देखोगे सब आनन्दमय हो जायगा। सुकर्म हृदय में यह भाव ले आने में सहायता करेगा—यह जानना।

२१-१-५४

(२३) सबके साथ सुन्दर और मधुर व्यवहार भी साधन का अंग समझो। क्योंकि सभी के अन्दर वही विराजमान हैं। इस भाव को जितना अधिक स्थायी कर सकोगे उतना ही मंगल होगा—यह जानना। १८-१-५४

(२४) श्री गुरुजी को तुम लोग किसी विशेष शरीर में सीमाबद्ध न समझना। वे सर्वत्र, सर्व अवस्था में, सब के अन्दर विराजमान हैं, यह जानकर सबकी सेवा करने की चेष्टा करना। इससे ही तुम गुरुजी की प्रसंन्नता का लाभ कर सकोगे। गुरु की प्रसन्नता से चतुर्वर्ग फल लाभ होता है यह समझना। अवश्य जिस-जिस शरीर का अवलम्बन करके उन्होंने तुम पर कृपा की है वह तुम्हारे पास विशेष आदरणीय हो—यह इच्छा करते हैं।

२१-१-५४

(२५) जब तक अस्तित्व बुद्धि रहती है, चेष्टा, कर्म आदि तब तक ही है यह समझना। अस्तित्व को विसर्जन देकर कर्म चेष्टा से अतीत होने में यत्नशील रहो—यह इच्छा करते हैं। किन्तु अलसभाव को प्रश्रय नहीं देना। अलस होने से कर्म अच्छा है—इस बात को हर समय स्मरण रखने की चेष्टा करना। गुरुशक्ति साथ रह कर तुम्हें चला रही है और चलायेगी, इस विश्वास को रखने से शान्ति और आनन्द मिलता है—समझना। ३१-३-५४

(२६) जगत् में एक 'वही' है। 'वही' आप ही अपनी लीला के लिये 'बहु' हुये हैं। 'बहु' भी 'एक' ही के अन्तर्गत है। 'एक' के अन्दर 'बहु', 'बहु' के अन्दर 'एक' ही विराजते हैं। इसे तुम लोग अनुभव करने की चेष्टा करते रहना—यही इच्छा करते हैं। ११-३-५४

(२७) गुरु और "इष्ट" को एक ही जानना। जीव के कल्याण के लिये

'इष्ट' ही गुरु रूप से आकर जीवको फिर उनके साथ मिलाते हैं। तुम लोग उन्हीं के पास से आये हो, अन्त में उन्हीं के पास जाना पड़ेगा इसे न भूलना—यही इच्छा करती हूँ। ४-३-५४

(२८) सद्गुरु की कृपा से सभी सम्भव है—यह जानना। गुरु पर एकान्त निर्भरता और विश्वास ही सबसे पहले आवश्यक है, और पहला सोपान है यह समझना। उनकी कृपा से सभी जब सम्भव होता है तब तुम्हें डरने का, विचलित होने का कोई कारण नहीं है। तुम लोग चेष्टा करने से उनका आशीर्वाद अवश्य ही पाओगे। २५-३-५४

(२९) तुम्हारी उन्नति से ही मेरी उन्नति है। तुम्हें छोड़कर हम मोक्ष नहीं चाहते। इसीलिये तुम मोक्ष के लिये तैयार हो। मुझको भी मोक्षलाभ का सुयोग दो—यही प्रार्थना है। २०-५-५४

(३०) हम तुम्हारे अन्दर थे, हैं, और रहेंगे। तिस पर भी यह आना और जाना, पाना और नहीं पाना, उसे केवल लीलामय की लीला का चरितार्थ होना ही समझना। २२-७-५४

(३१) तुम्हें क्या वाणी देंगे नहीं जानते। मैं ही तुम्हारे लिये वाणी हूँ। हम पेड़, तुम फूल। शक्तिमान् हम हैं, किन्तु शक्ति हो तुम लोग। तुमको छोड़ कर हम नहीं हैं। मुझे छोड़कर तुम भी नहीं हो। हम लोग परस्पर के अन्दर अंगागी रूप से जुड़े हुये हैं। इसका विच्छेद नहीं है, मिलन नहीं है क्योंकि मिलन का प्रश्न उठता है विच्छेद के भय से। जहाँ विच्छेद नहीं है वहाँ मिलन का प्रश्न अवान्तर है। हमारा सम्बन्ध मिलन और विच्छेद के बहु ऊर्ध्व में है उसे तुम अनुभव करने के लिये सब शक्ति का नियोग करो। २३-८-५६

(३२) कितना बड़ा पापी ही क्यों न हो हर समय पाप को क्षमा करके उसे पापकार्य से निवृत्त करने की चेष्टा करना। तुम्हारी चेष्टा से अगर एक पापी भी पापकार्य परित्याग करे तो अपने को सार्थक मानोगे—'उनका' आशीर्वाद लाभ करोगे; सब कोई 'उनकी' ही सन्तान हैं। २७-१२-५६

(३३) किसी भी अवस्था में जब मन का उद्वेग नहीं होता है, मन जब साम्यावस्था में रहता है तब ही 'मनोमय' को पाने का पथ प्रशस्त होता है। चञ्चल चित्त में वे भी चञ्चल रहते हैं। 'नाम' रूप रस में डूब कर चित्त को साम्यावस्था में लाने के लिये यत्नशील हो। २५-९-५८

(३४) एक बात याद आयी। देखो अच्छा मल्लाह तूफान के भीतर भी

अपनी नाव ठीक रखने की कोशिश करता है। किन्तु बेवकूफ मल्लाह किस तरह से तूफान को रोकूँ, इसी को सोचता है। तूफान को रोकना मल्लाह की शक्ति के बाहर है, किन्तु नाव सम्हालने की चेष्टा उसके साध्य के अन्दर है। इसी तरह तुम लोग अगर अच्छे मल्लाह होना चाहते हो तो संसार की प्रतिकूल आब-हवा के अन्दर भी अपनी साधना और भजन की नाव को ठीक रखने की चेष्टा करना। संसार की हवा अनुकूल करना कठिन है। किन्तु साधन-भजन को ठीक रखना चेष्टा के अन्दर है—यह जानो। २९-३-५८

(३५) गुरु को वही प्रेम करता है जो गुरुका वाक्य बिना विचारे, आनन्द के सहित मान सकता है। गुरु के पास प्रभुभक्त कुत्ते की तरह रहना पड़ता है। अपने अहंकार को सम्पूर्ण विसर्जन देकर उनका दासानुदास होने के लिये यत्न करना होगा। इस बात को सर्वदा के लिये हृदय में रखना होगा। गुरु के संग द्वारा उनके सान्निध्य-रूप पाथेय को (रास्ते का खर्च) संग्रह करने की चेष्टा करना। स्मरण रखना सान्निध्य ही आनन्द लाता है और पूर्णत्व लाता है। (स्थूल) शरीर से संग, दोष और त्रुटि से भरा हो सकता है, मानसिक संग ही यथार्थ संग है। १-१-५९

(३६) बन्धुहीन जीवन मरुमय है। असमय का बन्धु ही यथार्थ बन्धु है। जब उस पार का डाक (बुलावा) आता है तब अगर "दीन-बन्धु" साथी रहते हैं तो बन्धुर (ऊँचा-नीचा) पथ पर चलना नहीं होता। यह दीनबन्धु ही हमारा यथार्थ बन्धु है—यह जानो। ११-९-५८

(३७) अर्थ से गुरु को लाभ नहीं किया जाता। अर्थ से गुरु का हृदय जय नहीं किया जाता। अर्थ से गुरु को बन्धन में नहीं लिया जाता। एक मात्र परमभक्ति से ही गुरु को जानना, समझना और अन्त में उनमें लय हुआ जाता है—यह समझो। २६-१२-५७

(३८) चिन्ता का कोई कारण नहीं है। गुरु सकल अभाव से ही निष्कण्टक करके उद्धार करेंगे। यही गुरुका स्वभाव है। तुम लोग केवल निर्भरशील रहो। १५ आश्विन १२६३ (बंगला)

(३९) उन पर विश्वास रखना। उनको ही पकड़े रहना। उन्हीं को अवलम्बनीय जानकर अपने को सम्पूर्ण रूप से उनके चरणों पर उत्सर्ग कर देना। फूल की तरह अपने को तैयार कर लो—यही हम चाहते हैं।

२३-९-५६

(४०) हम कान से उनकी ही वाणी सुनें; आँखों से उनका ही रूप देखें; हाथ उनका ही काम करें; पैर उनकी तरफ ही बढ़ चलें—यही प्रार्थना अन्तर में जागरूक रक्खो, गन्तव्य पथ हो उनका ही धाम। ५-४-५६
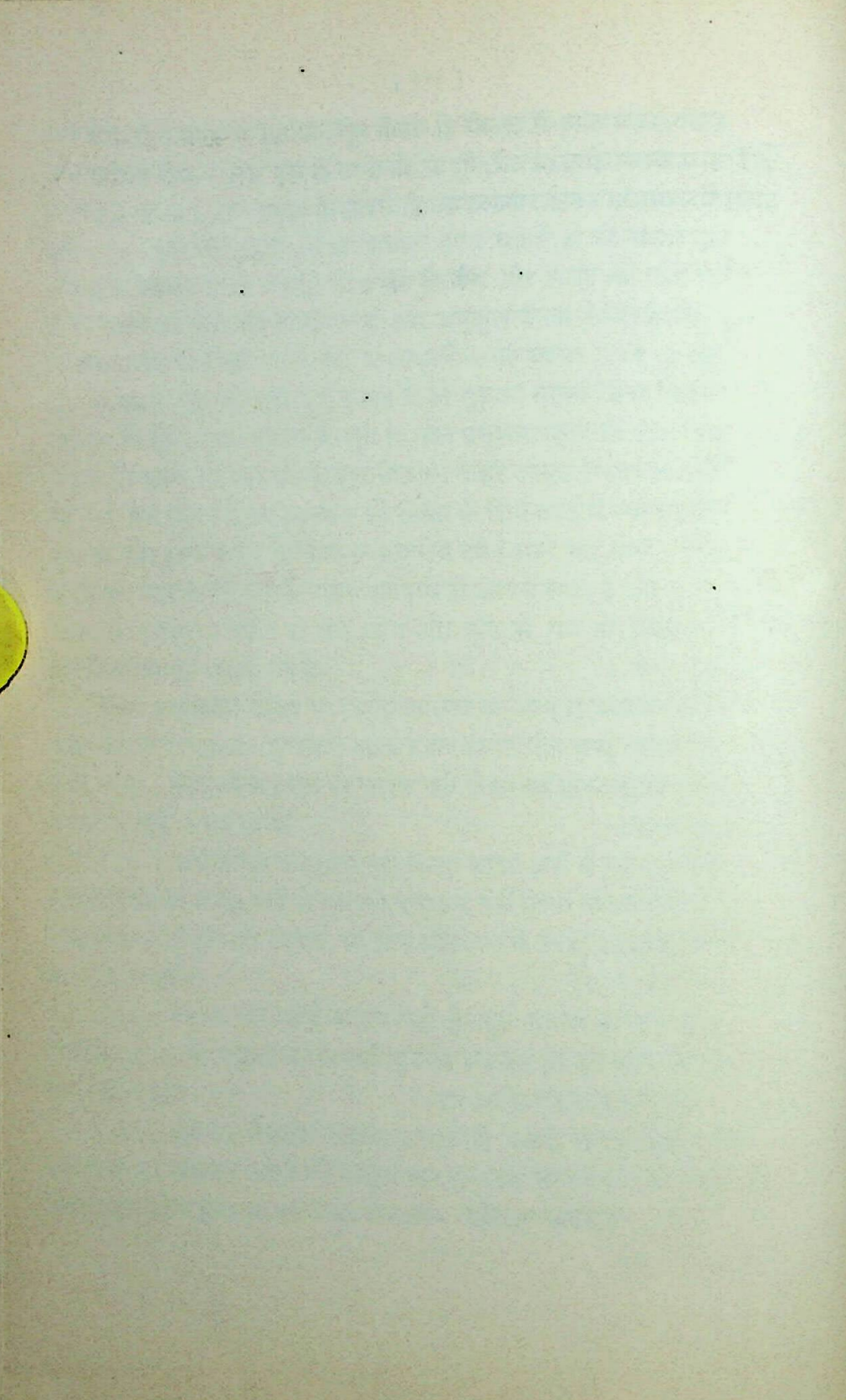
शोभा माँ

—महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज*

१९३८ ई० में जब मैं हरिद्वार महाकुंभ में उपस्थित हुआ था, उस समय वहाँ दीर्घकाल तक रहना पड़ा। मैं कुशावर्त घाट पर एक धर्मशाला में प्राय: दो मास रहा। उन दिनों माँ आनंदमयी भी डॉक्टर पंत के स्थान पर गंगातट पर अवस्थान कर रही थीं। उनके पास मैं बराबर जाया करता था। इस अवसर पर संतदास बाबाजी के शिष्य ब्रह्मचारी शिशिर कुमार राहा भी हरिद्वार आये थे। ये प्रात: नित्य मुझसे मिलने आते थे। ये परम भक्त एवं धर्मप्राण व्यक्ति थे। एक दिन (२८ मार्च, १९३८ ई०) प्रसंगवश इनसे पता चला कि इनकी एक चचेरी बहन के जीवन में अचानक बहुत परिवर्तन हो गया है। इन्होंने बताया कि १७-१८ वर्ष की आयु में ही उसे ब्रह्मसाक्षात्कार हुआ है। इस समय उसकी आयु २० वर्ष के लगभग है। इस बहन ने संतदास बाबाजी से भगवन्नाम प्राप्त किया था, परंतु दीक्षा नहीं हुई थी। नाम-प्राप्ति के अनन्तर शनै: शनै: भीतर से ही उसका आवरण हट गया और साक्षात्कार हुआ। इतनी छोटी आयु में ब्रह्मसाक्षात्कार विश्वास में आना कठिन था, परंतु ब्रह्मचारी शिशिर के कथन में अविश्वास का हेतु भी नहीं था। उसके पास उक्त बहन के हाथ की लिखी हुई एक डायरी थी, जिसमें उसके अनुभव का विशेष विवरण लिखा हुआ था। उसको पढ़कर मेरे चित्त में कुछ कौतूहल उत्पन्न हुआ।

कुंभमेला समाप्त होने के बाद मैं काशी लौट आया। इसके बाद ग्रीष्मावकाश में पुरी जाने के विचार से कलकत्ता गया। उस समय अपने मित्र तथा गुरुभाई डॉ० सुरेशचन्द्र देव के घर पर मैं कई दिनों तक रहा। एक दिन इस ब्रह्मज्ञ बालिका के विषय में चर्चा हुई। देव बाबू ने प्रस्ताव किया कि अगर आप चलें तो मैं भी आपके साथ उनके दर्शनार्थ चलूँगा। उस समय मेरे साथ सीताराम पांडे भी थे। यह बात चल ही रही थी कि देवहरि नामक एक युवक से सहसा भेंट हुई, जो संतदास बाबाजी के शिष्य थे और शिशिर कुमार राहा तथा उक्त बालिका के परिवार से भलीभाँति परिचित थे। उन्होंने कहा : 'यदि आप लोग चलें तो मैं पहुँचा दूँगा।' हम लोग चार आदमी थे। एक और जितेश चक्रवर्ती सम्मिलित हो गये। ये

---

* [प्रस्तुत लेख 'मनीषी की लोकयात्रा' (चतुर्थ संस्करण) के पृष्ठ २०५-२०८ से उद्धृत है।]

बाल्यकाल के मेरे पाठ्यकालीन गुरु, हाराणचन्द्र चक्रवर्ती, के पुत्र थे। पथप्रदर्शक देवहरि बाबू ने सुझाव दिया कि जाने के पहले यह अच्छा होगा कि मैं पत्र लिखकर उत्तर मँगा लूँ। चिट्ठी बालिका के पिता सुकुमार राहा को लिखी गयी। ये टिपारा (जिला कोमिल्ला, पूर्वबंग) के बरकांता नामक गाँव में रहते थे और स्थानीय हाई स्कूल के प्रधानाचार्य थे। सुकुमार बाबू मेरे आने का समाचार पाकर अत्यंत प्रसन्न हुए। तत्काल पत्र का उत्तर देते हुए लिखा कि हमलोग कोमिल्ला स्टेशन पर पहुँचने के समय की सूचना उन्हें तार द्वारा दे दें, जिससे वे अभ्यर्थना के लिए वहाँ उपस्थित हो सकें। ऐसा ही किया गया। तार का उत्तर भी आ गया।

२० मई, १९३८ ई० को हमलोग रवाना हुए। कलकत्ता के निकटवर्ती सियालदह स्टेशन से चलकर गाड़ी ग्वालंद स्टीमर स्टेशन पर पहुँची। वहाँ से स्टीमर द्वारा चाँदपुर गये। चाँदपुर में गाड़ी-पकड़ी। कोमिल्ला पहुँचे। यह जिला-नगर है। यहाँ हमलोगों ने देखा कि स्वागत के लिए स्टेशन पर कई महानुभाव उपस्थित हैं। उनमें से एक महाशय का नाम था प्रियनाथ बाबू। ये सुकुमार बाबू के मित्र थे और उनके अनुरोध से हमलोगों का स्वागत करने के उद्देश्य से आये थे। ये उच्च शिक्षा प्राप्त, बड़े ही विनम्र तथा उदार महानुभाव थे। इनका व्यवहार अत्यंत सहृदयतापूर्ण था। बरकांता गाँव कोमिल्ला नगर से आठ-दस मील दूरी पर है। हमलोगों को प्रियनाथ बाबू बस स्टेशन पर ले गये। वहाँ से हमलोग बस द्वारा बरकांता के लिए रवाना हुए। २१ मई को चार बजे सायंकाल गंतव्य स्थान पर पहुँच गये। सुकुमार बाबू ने हमलोगों के ठहरने के लिए पहले से ही एक पृथक् पक्का मकान ठीक कर रखा था, जिसमें शांत परिवेश था और किसी प्रकार का विक्षेप न था। किंतु हमलोग वहाँ न जाकर पहले सीधे उन्हीं के घर गये, क्योंकि अपना मुख्य उद्देश्य था बालिका का दर्शन करना। हमलोगों ने देखा, घर का वातावरण बहुत ही रमणीक था। चारों ओर फूस के परिष्कृत और स्वच्छ मकान थे। वे देखने में बहुत सुंदर लगते थे। घर के निकट ही दक्षिण की ओर एक विशाल पोखरा था जिसमें जल भरा हुआ था। सुकुमार बाबू का स्कूल भी दूर नहीं था। इस घर के एक बड़े कमरे में हमलोगों के बैठने का प्रबंध किया गया था। उसमें कुर्सियाँ रखी गयी थी। कई बिछे हुए तख्ते भी थे। कमरे के एक प्रांत में अठारह-उन्नीस वर्ष की एक बालिका बैठी थी—अत्यन्त प्रसन्न मूर्ति। हमलोग उसे अभिवादन कर कुर्सियों पर बैठ गये। उसने प्रत्यभिवादन करते हुए कहा: 'आपके आने से हम बहुत प्रसन्न हुए।'

मैंने कहा, 'मेरे यहाँ आने का विषय, देवहरि का पत्र आने के पहले, क्या तुम्हें मालूम था?' बालिका ने उत्तर दिया : 'हाँ था।' मैंने कहा : 'कब मालूम हुआ?' वह बोली : 'जिस दिन मुझे ब्रह्मसाक्षात्कार हुआ। यह दो साल पहले की बात है।' मैंने पूछा : 'क्या ब्रह्मसाक्षात्कार के साथ छोटे-मोटे सब विषयों का ज्ञान हो जाता है?' उसने कहा : 'हाँ, पूर्ण ब्रह्मज्ञान हो तो अवश्य होता है, अन्यथा नहीं।' तब हमने कहा : 'इस विषय में मेरा कुछ प्रश्न है।' उसने कहा : 'कहिये'। मैंने जिज्ञासा की : 'तुमने कहा पूर्ण ब्रह्मज्ञान हो तो अवश्य होता है, तो ब्रह्मज्ञान और पूर्ण ब्रह्म-ज्ञान में क्या कुछ भेद है?' उसने कहा : 'हाँ भेद है। ब्रह्मज्ञान सामान्यज्ञान है किन्तु पूर्णब्रह्मज्ञान सामान्य के साथ अनंत-विशेष-ज्ञान है।' मैंने पूछा : 'सामान्य ब्रह्मज्ञान होने पर अखंड सत्ता का बोध होता है परंतु कुछ विशेष का ज्ञान नहीं होता और होने की संभावना भी नहीं रहती। परंतु योगी सामान्य ब्रह्मज्ञान के अनंतर इच्छा-शक्ति से विशेष ज्ञान कर लेते हैं। 'पूर्णब्रह्मज्ञान होने पर उस प्रकार की इच्छाशक्ति की आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि उस समय सामान्य एवं विशेष दोनों ही ज्ञान का विषय रहता है।' मेरा प्रश्न था : 'योगी ब्रह्मज्ञान प्राप्त किये बिना इच्छाशक्ति से सब जान सकते हैं या नहीं?' बालिका ने कहा : 'इच्छाशक्ति का उदय होगा कहाँ से? अखंड सत्ता का ज्ञान हुए बिना इच्छाशक्ति हो ही नहीं सकती। इच्छा मात्र हो सकती है।' मैंने अनुभव किया कि यह बिल्कुल ठीक कह रही है। चित्त में बहुत प्रसन्नता हुई।

इसके बाद भिन्न-भिन्न विषयों पर चर्चा होने लगी। प्रसंगतः अवतारवाद पर विचार होने लगा। उसने कहा : 'मेरी दृष्टि से वास्तव में भगवान् का कोई अवतार होता ही नहीं है। जिसको लोग अवतार समझते हैं, यह वस्तुतः जीव का ही अवतार है, भगवान् का नहीं।' मैंने पूछा : 'तब उसको भगवान् का अवतार माना क्यों जाता है?' वह बोली : 'उसका कारण यही है। जीव भगवान् के साथ सायुज्य लाभ करके उनसे अभिन्न हो जाता है, इसीलिए एक दृष्टि से उसे भगवान् का अवतार कहने में दोष नहीं है। वास्तव में भगवान् की कोई अंशकला होती ही नहीं, यह शक्ति का खेल है। शास्त्र में बहुत-सी बातें गुप्त रूप में कही गयी हैं, उनमें से अधिकांश अब तक प्रकाशित भी नहीं हो सकी हैं। जब तक दृष्टि नहीं खुलती, तब तक वे समझ में नहीं आ सकतीं।' बालिका ने पाण्डवों के महाप्रस्थान, विशेष रूप से युधिष्ठिर के सशरीर स्वर्गगमन के विषय में बहुत-सी बातें बतायीं, जिसका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा रहा है।

इसके बाद हम लोग निर्दिष्ट स्थान पर जाकर विश्राम करने लगे। यथासमय भोजन किया। रात में तथा दोपहर को सुकुमार बाबू के घर खाने के लिए जाते थे। उस समय बालिका से अध्यात्मचर्चा होती थी। प्रियनाथ बाबू बराबर साथ में रहते थे। वहाँ एक महाशय और थे जिन्हें बालिका श्रीगोस्वामी के अंश से आविर्भूत बताती थी। वरकांता से हम लोगों ने २१ मई, १९३८ को प्रस्थान किया। मार्ग में उस प्रदेश के प्रसिद्ध शैवपीठ, चंद्रनाथ-पर्वत, का दर्शन करके कलकत्ता लौट आये।

इस प्रथम परिचय के बाद १९३८ ई० के दिसंबर में मुझे पुनः शोभा माँ का दर्शन मिला। इसके अनन्तर वे एक बार काशी भी आयीं, तब से घनिष्ठता बढ़ गयी। इनके जीवन का विशेष वृत्तान्त बाबू अक्षयकुमारदत्तगुप्त ने अपने ग्रन्थ में विस्तार के साथ दिया है।[१] इस यात्रा में दो अन्य लाभ हुए—उनमें से एक था श्री राधागोविन्द नाथ महाशय से परिचय, वे उन दिनों कोमिल्ला में विक्टोरिया कालेज के प्रिंसिपल थे और दूसरा गोपीचंद की माता मैनावती के टीले का दर्शन। यह स्थान गोरखनाथ संप्रदाय का विशिष्ट केंद्र माना जाता है। मैं इसे शोभा माँ के दर्शन का ही फल मानता हूँ।

१. देखिये—'श्री श्री शोभा माँ'

वात्सल्यमयी श्री श्री माँ

श्री श्री दुर्गा

२ ए सिगरा, बनारस
२३१-३९

स्नेहास्पदेषु,

सुकुमार बाबू, कलकत्ता से लिखे हुये आपके दोनों ही पत्र प्राप्त हुये। शरीर अस्वस्थ होने के कारण उत्तर देने में विलम्ब हुआ। आप कुछ बुरा न मानें। आपके पत्र के साथ ही शोभा माँ का जो पत्र प्राप्त हुआ, उसके बाद और पत्र नहीं प्राप्त हो सका; इसके लिये चिंतित हूँ। आप हमेशा मेरे पास पत्र लिखें। जिस समय जो भी अवस्था हो, आप सहज रूप में मुझे उसकी जानकारी दें। आप हमेशा मुझे अपना हितैषी समझें। यद्यपि मैं आप लोगों की, विशेष रूप से शोभा माँ की सेवा नहीं कर सका, आपातत: उस आनन्द से मैं वञ्चित हो गया हूँ, फिर भी आप यह विश्वास करें कि मैं शोभा माँ का निष्कपट भक्त हूँ। संसार में विभिन्न प्रतिकूल शक्तियाँ कार्य करती हैं, इस कारण हर समय इच्छानुरूप विकास नहीं हो सकता है। अवश्य इसके मूल में उन्हीं की इच्छा है। 'सत्य' अपने समय पर अवश्य प्रकाशित होगा, कोई भी इसका गतिरोध नहीं कर सकता। कितनी आशा करके आप लोगों की दया से इस बार शोभा माँ को लेकर आया था, किन्तु उनके सत्संग का आनन्द नहीं ले सका। दैव प्रतिकूल रहा। जो भी हो, आज यहाँ वह इच्छा पूर्ण नहीं हुई, कालान्तर और देशान्तर में पूर्ण हो सकती है।

कृपा करके पत्र पढ़ते ही उत्तर दें। शोभा माँ के सम्बन्ध में जो कुछ भी जानकारी हो या अनुभव हो, मुझे अवगत कराना न भूलें। मैं सत्यान्वेषी हूँ, इसलिये मुझे वञ्चित न करें।

मेरी रक्त-परीक्षण की Report कल मिलेगी। उसके बाद ऑपरेशन का दिन निश्चित होगा। मुझे घर के पते पर पत्र दीजियेगा। सबुज और हेना को मेरा सस्नेह आशीर्वाद दें। आप मेरा प्रीतिसम्भाषण स्वीकार करें। कृपया उत्तर शीघ्र दें।

आपका
श्री गोपीनाथ

प्रसंग सूची

(संख्याएँ पत्रांक की ज्ञापक हैं)

***